सितंबर
2025

धर्म एवं अध्यात्म के तत्त्वज्ञान का वैज्ञानिक विश्लेषण

अखण्ड ज्योति

वर्ष 89 | अंक - 9 | प्रति - ₹ 25 | ₹ 300 वार्षिक

भवानीशङ्करौ वन्दे श्रद्धाविश्वासरूपिणौ। याभ्यां विना न पश्यन्ति सिद्धाः स्वान्तःस्थमीश्वरम्॥

7 ▸ मानव जीवन का परम लक्ष्य
34 ▸ मन का बंधन है आसक्ति
23 ▸ यह समाज जाग्रत कैसे होगा ?
42 ▸ नारी सशक्तीकरण की दिशा में यों बढ़ें कदम

दैवी संपत्ति का संचय कीजिए

धन उतना ही आवश्यक है, जितने से शारीरिक, मानसिक और पारिवारिक उत्तरदायित्व सुविधापूर्वक पूरे होते रहें। इस मर्यादा से अधिक मात्रा में धन-उपार्जन करने एवं जोड़ने की तृष्णा सुखदायक नहीं, वरन अनेकों कलह-क्लेश व पापों को उपस्थित करने वाली होती है, अनावश्यक धन के संचय को पाप माना गया है और परिग्रह (अनावश्यक धन जोड़ने) को प्रधान पाँच पापों में से एक गिना गया है। जोड़ने योग्य, जमा करने योग्य, कभी संतुष्ट न होने योग्य संपत्ति तो सद्गुणों की दैवी संपत्ति ही है। शिक्षा, शिल्प, संगीत, रसायन कला आदि की योग्यताएँ एक सोना भरी तिजोरी से अधिक मूल्यवान हैं। जो धन से विमुख होकर योग्यताएँ कमाता है, शक्तियाँ उपार्जित करता है, वह घाटे का नहीं, नफे का व्यापार कर रहा है। जिसने गुणों की शक्तियों की उपेक्षा करके धन कमाने का ही कार्यक्रम अपनाया हुआ है, वह आत्मिक दृष्टि से मूर्ख ही ठहराया जाएगा।

धन से योग्यताओं का मूल्य अधिक है और योग्यताओं से स्वभावों का महत्त्व विशेष है। किसी व्यक्ति के पास धन और सांसारिक विशेषताएँ न होने पर भी यदि उसने उच्च दृष्टिकोण, सद्विचार, अच्छा विवेक, सात्विक वृत्ति और मधुर व्यवहार अपने स्वभाव में परिपूर्ण कर लिया है तो अवश्य समझिए कि वह किसी भी बड़े-से-बड़े धन कुबेर और गुणवान से कम संपत्तिशाली नहीं है। अपनी उच्च आंतरिक स्थिति के कारण वह अल्प साधनों में भी इतना आनंदित रहेगा, जिसकी कल्पना भी असंस्कृत मस्तिष्क वाले नहीं समझ सकते। जिसकी पाचनशक्ति प्रबल है, वह मोटी रोटी में भी ऐसा आनंद अनुभव करेगा, जो उदर रोगी को षड्रस व्यंजनों में भी नसीब नहीं हो सकता। मनोभूमि की शुद्धता को प्रबल पाचनशक्ति ही समझना चाहिए, जिसके होने पर गरीबी में भी स्वर्गीय जीवन का रस लिया जा सकता है।

(अखण्ड ज्योति, सितंबर-1950, पृष्ठ 5)

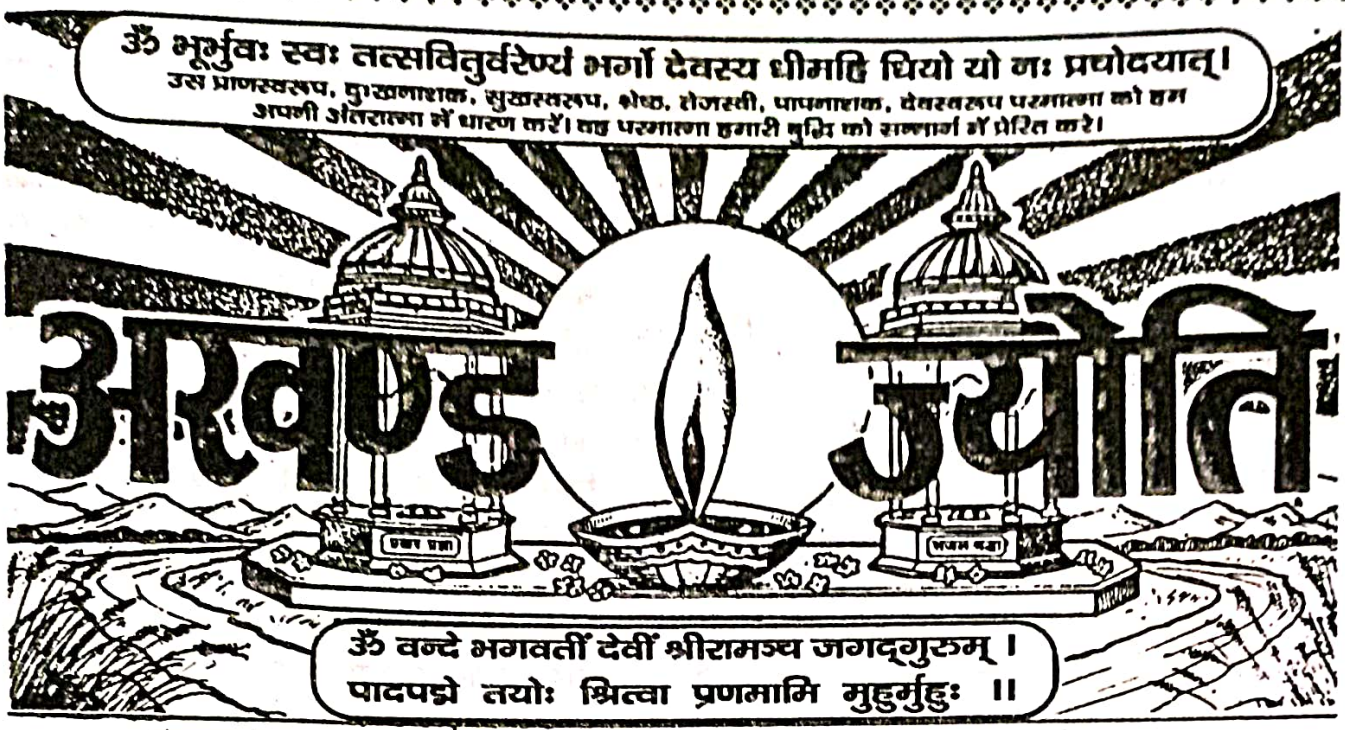

संस्थापक-संरक्षक
वेदमूर्ति तपोनिष्ठ
पं० श्रीराम शर्मा आचार्य
एवं
शक्तिस्वरूपा
माता भगवती देवी शर्मा
संपादक
डॉ० प्रणव पण्ड्या
कार्यालय
अखण्ड ज्योति संस्थान
बिरला मंदिर के सामने मथुरा-वृंदावन
रोड जयसिंहपुरा, मथुरा (281003)
दूरभाष नं० (0565) 2403940, 2972449
2412272, 2412273
मोबाइल नं० 9927086291, 7534812036
7534812037, 7534812038, 7534812039
समय—प्रातः 10 से सायं 6 तक
कृपया इन मोबाइल नंबरों पर
एस. एम. एस. न करें।
नया ई-मेल :
akhandjyoti@akhandjyotisansthan.org

वर्ष	:	89
अंक	:	09
सितंबर	:	2025
भाद्रपद-आश्विन	:	2082
प्रकाशन तिथि	:	01.08.2025

वार्षिक चंदा

भारत में सामान्य डाक से	:	300/-
भारत में रजिस्टर्ड डाक से	:	540/-
विदेश में	:	2800/-

आजीवन (बीसवर्षीय)

भारत में सामान्य डाक से	:	6000/-
भारत में रजिस्टर्ड डाक से (वार्षिक):		+240/-

साधकों का संगठन-संगठन के कार्यक्रम

(क्रमशः)

साधकों का संगठन—संगठन के कार्यक्रम संपन्न कर, अपनी संरचना का सुदृढ़ विस्तार करता गया। विविध आयोजनों-कार्यक्रमों के माध्यम से परमपूज्य गुरुदेव प्रेमी परिजनों के घर पहुँचने लगे। वे जहाँ पर जाते, वहाँ अनायास आध्यात्मिक ऊर्जा का चक्रवाती तूफान उठ खड़ा होता; जिससे वहाँ के क्षेत्रनिवासी अपने आस-पास के क्षेत्रीय जनों के साथ गुरुदेव की जीवन-चेतना की डोर से बँधे बिना न रहते। इन कार्यक्रमों-आयोजनों का रूप-स्वरूप विविध क्षेत्रों में विविध होता। कहीं यज्ञ आयोजन की शृंखलाएँ अपनी पावन ज्वालाओं में अनेकों के विकार-संस्कार भस्म करतीं। कहीं विचार गोष्ठियों की बहुतायत में विचार क्रांति का विचार-मंथन होता। कहीं पर संगठन संगोष्ठियों में संगठन और अधिक संगठित होता। यह सब जहाँ पर जिस रूप में होता, वहाँ सभी को परमपूज्य गुरुदेव की आध्यात्मिक चेतना का पावन स्पर्श अवश्य मिलता। उनका यह देशव्यापी भ्रमण अनेकों को निमित्त बनाकर, बस आध्यात्मिक ऊर्जा के प्रसाद-वितरण के लिए हुआ। इस क्रम में वे देश के साथ विदेश भी गए। उनकी यह यात्रा जलयान से संपन्न हुई। स्थान-स्थान पर बसे भक्तों ने अपने भगवान को जब-जब पुकारा, तब-तब वे गए। श्रीराम, रामभक्तों की जन्म-जन्मांतर की साधना की सिद्धि बनकर गए। उनके जीवन की सार्थकता-सफलता व संपूर्णता बनकर गए। सभी को अपनी आध्यात्मिक चेतना के सूत्र में मणियों की तरह पिरोने के लिए गए। उन्हें यह भरोसा दिलाने के लिए गए कि साधकों का यह संगठन सदा-सदा के लिए भक्तों का अपने भगवान से मिलन है। हममें से कोई कभी कहीं भी रहकर बिछड़ेगा नहीं। ❐

विषय सूची

- आवरण—1 1
- आवरण—2 2
- साधकों का संगठन-संगठन के कार्यक्रम 3
- **विशिष्ट सामयिक चिंतन**
  प्लास्टिक प्रदूषण की गंभीर समस्या 5
- मानव जीवन का परम लक्ष्य 7
- गुरु गोविंद दोऊ खड़े, काके लागूँ पाँय 9
- करुणा की प्रतिमूर्ति—संत तुकाराम 12
- परमात्मा की परम सत्ता 14
- **पर्व विशेष—नवरात्र**
  दिव्यता का पर्व—नवरात्र 16
- एकमात्र सत्य परमात्मा हैं 18
- जीवसेवा—शिवसेवा 20
- यह समाज जाग्रत कैसे होगा? 23
- पिरामिड का अबूझ रहस्य 25
- अंतर्पुकार 27
- व्यवहार की उत्प्रेरक हैं भावनाएँ 29
- कश्मीर में रामभक्ति की भावधारा 31
- मन का बंधन है आसक्ति 34
- शिवाजी को गढ़ने वाली माता जीजाबाई 36
- गंगा के बाघ की रक्षा 40
- नारी सशक्तीकरण की दिशा में यों बढ़ें कदम 42
- **ब्रह्मवर्चस-देव संस्कृति शोध सार—197**
  भक्तिकाल के कवियों पर शोध 44
- **युगगीता—304**
  कर्मप्रेरणा और कर्मसंग्रह के आधार 48
- **विश्वविद्यालय परिसर से—243**
  संस्कारों के उत्सव का केंद्र बना विश्वविद्यालय 50
- **परमवंदनीया माताजी की अमृतवाणी**
  साहस जुटाएँ, संकल्प जगाएँ 53
- **साधना शताब्दी-विशिष्ट लेखमाला**
  राजनीति की नीति 60
- **अपनों से अपनी बात**
  अपना सुधार संसार की सबसे बड़ी सेवा 63
- शत-शत तुम्हें प्रणाम (कविता) 66
- आवरण—3 67
- आवरण—4 68

आवरण पृष्ठ परिचय

भवानीशङ्करौ वन्दे श्रद्धाविश्वासरूपिणौ। याभ्यां विना न पश्यन्ति सिद्धाःस्वान्तः स्थमीश्वरम्

सितंबर-अक्टूबर, 2025 के पर्व-त्योहार

बुधवार	03 सितंबर	जलझूलनी एकादशी	सोमवार	06 अक्टूबर	शरद् पूर्णिमा
गुरुवार	04 सितंबर	वामन जयंती	मंगलवार	07 अक्टूबर	वाल्मीकि जयंती
शनिवार	06 सितंबर	अनंत चतुर्दशी	शुक्रवार	10 अक्टूबर	करवा चौथ
रविवार	07 सितंबर	महालयारंभ/महाप्रयाण दिवस वं. माताजी	सोमवार	13 अक्टूबर	अहोई अष्टमी
गुरुवार	11 सितंबर	परमवंदनीया माताजी जयंती	शुक्रवार	17 अक्टूबर	रमा एकादशी
सोमवार	15 सितंबर	मातृ नवमी	रविवार	19 अक्टूबर	धनतेरस
बुधवार	17 सितंबर	इंदिरा एकादशी	सोमवार	20 अक्टूबर	रूप चतुर्दशी
शुक्रवार	19 सितंबर	परमपूज्य गुरुदेव जयंती	मंगलवार	21 अक्टूबर	दीपावली
रविवार	21 सितंबर	पितृमोक्ष अमावस्या	बुधवार	22 अक्टूबर	अन्नकूट/बेसतुबरस
सोमवार	22 सितंबर	नवरात्रारंभ	गुरुवार	23 अक्टूबर	भाईदूज
गुरुवार	02 अक्टूबर	विजयादशमी/ गांधी-शास्त्री जयंती	रविवार	26 अक्टूबर	लाभ पंचमी
शुक्रवार	03 अक्टूबर	पापांकुशा एकादशी	शुक्रवार	31 अक्टूबर	अक्षय नवमी

★ **यह पत्रिका आप स्वयं पढ़ें तथा औरों को पढ़ाएँ। कुछ समय के बाद किसी अन्य पात्र को दे दें, ताकि ज्ञान का आलोक जन-जन तक फैलता रहे। —*संपादक***

▶'नारी सशक्तीकरण' वर्ष◀

विशिष्ट सामयिक चिंतन

प्लास्टिक प्रदूषण की गंभीर समस्या

सालों से चल रही मुहिम के बाद भी पॉलीथिन से अब तक मुक्ति नहीं पाई जा सकी है। हर छोटे अंतराल के बाद पॉलीथिन के प्रयोग पर रोक लगती है, नए अभियान चलाए जाते हैं, पर नतीजा कुछ नहीं होता है। सही शब्दों में कहें तो संगठित तौर पर कुछ भी ऐसा नहीं किया गया है, जिससे प्लास्टिक के बढ़ते प्रचलन को नियंत्रित किया जा सके। हिल स्टेशनों से लेकर कई ऐसे राज्य हैं, जहाँ इसके उपयोग पर रोक है, इसके बावजूद पॉलीथिन थैले खुलेआम दिखाई दे जाते हैं।

प्लास्टिक के प्रलय से आज दुनिया का कोई भी कोना अछूता नहीं है। एक वर्ग किलोमीटर समुद्र में प्लास्टिक के औसतन 46000 टुकड़े तैरते रहते हैं। हिमालय की बरफ से ढकी चोटियाँ भी पर्वतारोहियों द्वारा छोड़े गए मलबों से पट रही हैं। यदि गंगा नदी ही आस्था के नाम पर फेंके जा रहे प्लास्टिक थैलों से त्रस्त है तो भारत की अन्य नदियों की स्थिति के बारे में सहज ही अनुमान लगाया जा सकता है। जीवनदायिनी यमुना-गोमती की हालत किसी से छिपी नहीं है।

यमुना ने तो दम तोड़ ही दिया और बाकी नदियाँ दम तोड़ने के कगार पर हैं, लेकिन सवाल यह उठता है कि आखिर इतनी कोशिशों के बाद भी प्लास्टिक विस्तार को नियंत्रित क्यों नहीं किया जा सका। इसका सीधा-सा उत्तर यह है, क्योंकि इसका जुड़ाव लोगों की सुविधा से है और लोग अपनी सुविधाओं में कतई कटौती नहीं करना चाहते।

इस कारण से कोई बीच का रास्ता निकाला जाना चाहिए। सवाल प्लास्टिक या इसके इस्तेमाल को खतम करने का नहीं, बल्कि इसके उपयुक्त प्रयोग का है। प्लास्टिक के बढ़ते उपयोग से इसके कचरे में वृद्धि हुई है और इसे जलाकर ही नष्ट किया जा सकता है। यदि ऐसा किया जाता है तो यह पर्यावरण के लिए घातक साबित होगा।

ऐसे में इस समस्या का केवल एक ही समाधान है—पुनर्चक्रण अथवा रिसाइकिलिंग। कुछ समय पूर्व पर्यावरण मंत्रालय ने प्लास्टिक के कचरे को ठिकाने लगाने के उपाय सुझाने के लिए एक समिति गठित की थी, जिसने अपनी रिपोर्ट में इस बात पर बल दिया था कि प्लास्टिक की मोटाई 20 की जगह 100 माइक्रोन तय की जानी चाहिए, ताकि ज्यादा-से-ज्यादा प्लास्टिक का पुनर्चक्रण किया जा सके।

इस समस्या के विस्तार का सबसे प्रमुख और अहम कारण सरकार का ढुलमुल रवैया है। पर्यावरणवादी भी मानते हैं कि सरकार को विदेशों से सबक लेना चाहिए, जहाँ निर्माता को ही उसके उत्पाद के तमाम पहलुओं के लिए जिम्मेदार माना जाता है। इसे निर्माता की जिम्मेदारी का नाम दिया गया है। उत्पाद के कचरे को वापस लेकर उसका पुनर्चक्रण करने तक की पूरी जिम्मेदारी निर्माता की ही होती है।

एक रिपोर्ट के मुताबिक भारत में कुल उत्पादित प्लास्टिक में से 45 फीसदी कचरा बन जाता है और महज 45 फीसदी का ही पुनर्चक्रण हो पाता है। अभिप्राय स्पष्ट है कि हमारे देश में पुनर्चक्रण बहुत कम है। प्लास्टिक को अगर अधिक-से-अधिक पुनर्चक्रण योग्य बनाया जाए तो कचरे की समस्या अपने आप ही समाप्त हो जाएगी।

इस बात पर अगर शुरू से ही ध्यान केंद्रित किया गया होता तो शायद समस्या इतना विकराल रूप धारण नहीं कर पाती। इसके साथ-साथ प्लास्टिक के निरर्थक उपयोग को लेकर नियम और कानूनों को भी सख्त बनाने की जरूरत है। हमारे देश में पर्यटनस्थलों पर आने वाले सैलानी अपनी मनमर्जी के मुताबिक प्लास्टिक थैलों को फेंक देते हैं।

इससे न केवल उस क्षेत्र की सुंदरता प्रभावित होती है, बल्कि उसका खामियाजा पर्यावरण को उठाना पड़ता है। प्लास्टिक पर नियंत्रण के लिए हमारी उपभोक्तावादी नीति का ही पुनर्मूल्यांकन करना चाहिए। उपभोग एवं सुविधा की अधिकता जीवन, समाज और पर्यावरण सभी को संकट में डालती है। अत: सबको इस विषय पर गंभीरता से सोचना चाहिए। ❑

स्कॉटलैंड का सम्राट ब्रूस अभी गद्दी पर बैठ भी नहीं पाया था कि दुश्मनों ने हमला कर दिया। बड़ी मुश्किल से वह सँभल पाया था कि दोबारा हमला हो गया। वह हारते-हारते बचा।

कुछ समय बाद कई राजाओं ने मिलकर हमला कर दिया तो बेचारे की राजगद्दी छिन गई। लगातार चौदह बार मिली असफलताओं के कारण उसके सैनिक भी कहने लगे कि ब्रूस के भाग्य में सब कुछ है, पर विजय नहीं और उन्होंने भी उसका साथ छोड़ दिया।

निराश ब्रूस एक दिन अकेला एक पहाड़ी पर बैठा था। उसने देखा कि पास के पेड़ पर एक मकड़ी बार-बार एक टहनी से दूसरी टहनी पर जाने का प्रयास करती, पर बीच में ही गिर जाती और उसका जाला बन न पाता। मकड़ी ने बीस बार प्रयत्न किया, फिर भी हिम्मत न हारी और अंतत: इक्कीसवीं बार में सफल हो गई।

यह देखकर ब्रूस की प्रसन्नता का ठिकाना न रहा और वह बोला—"अभी तो सात अवसर और बाकी हैं, फिर हार क्यों मानूँ?" यह कहकर उसने साथी राजाओं व सैनिकों की सेना बनानी शुरू की और एक बार पूरी शक्ति के साथ आक्रमण किया। युद्ध में उसकी विजय हुई और उसने न केवल अपना खोया राज्य प्राप्त किया, बल्कि वह पूरे स्कॉटलैंड का सम्राट भी बना। असफलता केवल यह सिद्ध करती है कि सफलता का प्रयास पूरे मनोयोग के साथ नहीं किया गया।

मानव जीवन का परम लक्ष्य

वेद, उपनिषद्, पुराण, गीता, रामायण आदि सद्ग्रंथ व उन सद्ग्रंथों, शास्त्रों में वर्णित आत्मज्ञान, ब्रह्मज्ञान को कठोर साधना, जप, तप, ध्यान, समाधि के द्वारा अनुभव करने वाले ब्रह्मनिष्ठ, ब्रह्मज्ञानी महापुरुष हमें बार-बार यह स्मरण दिलाते हैं कि बड़े भाग्य से हमें यह मानव तन मिला है, पर यह पशु-पक्षी आदि भोग योनियों की तरह भोग करने मात्र के लिए नहीं मिला है। मनुष्य योनि, भोग योनि नहीं, बल्कि कर्मयोनि है; जिसमें हम जप, तप, ध्यान आदि कर्म करके मानव जीवन के चरम व परम लक्ष्य अर्थात ब्रह्म की, ईश्वर की प्राप्ति करके अपने जीवन को सफल बना सकते हैं।

श्रुति दोहराती है कि जब तक यह दुर्लभ मनुष्य तन, मनुष्य शरीररूपी साधन भगवत्कृपा से उपलब्ध है, तभी तक शीघ्र-से-शीघ्र परमात्मा को जान लेना चाहिए, ईश्वर को जान लेना चाहिए, ब्रह्म को जान लेना चाहिए वरना यदि यह अवसर भोग-विलास मात्र करते रहने में ही बीत गया और यह अवसर हाथ से निकल गया तो फिर बड़ी हानि होगी, बड़ा विनाश हो जाएगा।

तुम्हें बार-बार मृत्यु रूप संसार के प्रवाह में बहना पड़ेगा। फिर रो-रोकर पश्चात्ताप करने के अलावा तुम्हारे पास अन्य कुछ भी शेष नहीं रह जाएगा। ऐसा विचार कर सर्वज्ञ, सर्वव्यापी, सर्वनियंता, सर्वाधिपति, सर्वशक्तिमान, सर्वगुणस्वरूप, सच्चिदानंदस्वरूप, परब्रह्मपरमेश्वर, जिनसे यह समस्त विश्व-ब्रह्मांड परिपूर्ण है, उनका आश्रय अविलंब ग्रहण कर लेना चाहिए और नित्य भगवद्ध्यान, स्वाध्याय, संयम, सेवा करते हुए जीवन जीना चाहिए।

वास्तव में सद्ग्रंथों में वर्णित उपरोक्त उपदेश मनुष्यों के लिए एक पवित्र आदेश की भाँति है कि अखिल विश्व-ब्रह्मांड उस सर्वाधार, सर्वाधिपति, सच्चिदानंदस्वरूप परब्रह्म परमेश्वर से संव्याप्त है। वे परब्रह्म परमेश्वर ही शाश्वत सुख, परमानंद, ब्रह्मानंद के आदिस्रोत हैं। हमें यह आत्मिक आनंद किसी भी सांसारिक अथवा भौतिक विषय-भोगों से प्राप्त नहीं हो सकता।

परब्रह्म परमेश्वर के अतिरिक्त अन्य कोई भी साधन हमें सच्चा सुख, शाश्वत सुख प्रदान नहीं कर सकते और साथ ही अन्य साधन हमें त्रिविध तापों से, दुःखों से भी मुक्त नहीं करा सकते हैं और न ही जन्म-मरणरूपी बंधन से मुक्त करा सकते हैं। इसके लिए एकमात्र परमात्मा ही आधार हैं; क्योंकि वे ही सर्वाधार हैं।

जीवात्मा का कल्याण परमात्मा से ही संभव है। जीव का कल्याण शिव से ही संभव है। इसलिए इस संसार में रहते हुए हम सदा परब्रह्म परमेश्वर का स्मरण करते रहें, जिससे हम संसार में रहकर भी संसार से निर्लिप्त रहें ठीक वैसे ही, जैसे जल में रहकर कमल जल से निर्लिप्त रहता है।

जो संसार में लिप्त रहता है, वो नानाविध दुःख पाता है और जन्म-मृत्यु के चक्र में पड़कर नानाविध दुःख भोगता रहता है। अतएव यह समझ कर उन परब्रह्म परमेश्वर को निरंतर भजते हुए, उनका निरंतर स्मरण करते हुए, उनका निरंतर

ध्यान करते हुए हमें इस संसार में जीवन जीना चाहिए।

उनका निरंतर स्मरण, ध्यान करने से इस संसार के प्रति, इस जगत् के प्रति हमारी जो ममता है, आसक्ति है—वह मिटेगी और परमात्मा में ही हमारी परमासक्ति होगी।

तब हृदय में परमात्मा को अनुभव करते रहने से हम अपने कर्त्तव्यों का पालन निरासक्त होकर, निष्काम भाव से कर सकेंगे और कर्त्तव्यपालन, जीवन-निर्वाह मात्र के लिए ही विषयों का यथाविधि उपभोग करेंगे। हम विश्वरूप भगवान की पूजा के लिए कर्मों का आचरण कर पाएँगे। हम यह भली भाँति अनुभव कर सकेंगे कि संसार के भोग पदार्थ नहीं, बल्कि परमात्मा ही शाश्वत सुख-शांति के स्रोत व आधार हैं और अंततः हमारे लिए परब्रह्म परमेश्वर को पाकर सर्वदा के लिए सुखी व आनंदित होने का मार्ग स्वतः ही प्रशस्त हो सकेगा।

अस्तु हमें आज और अभी से ही अपने आत्मकल्याण में प्राणपण से जुट जाना चाहिए; क्योंकि इस क्षणभंगुर मानव शरीर, मानव जीवन का कोई भरोसा नहीं। न जाने कब मृत्यु इसे अपने अंक में भर ले और जीवन के परम लक्ष्य को पाए बिना ही हमें यह शरीर छोड़ना पड़े और बार-बार जन्म-मरण के चक्र में पड़े रहकर दुःख भोगना पड़े। ❑

महाभारत में उल्लेख आता है कि भीम ने अश्वत्थामा नामक हाथी का वध कर दिया। अश्वत्थामा द्रोणाचार्य के पुत्र का भी नाम था। भगवान श्रीकृष्ण द्रोणाचार्य को पाप-मार्ग से विरत करना चाहते थे व ऐसा उनके युद्ध छोड़ने पर ही संभव था। अतः उन्होंने द्रोणाचार्य के कान में जाकर कहा कि 'अश्वत्थामा हतः'—अश्वत्थामा मारा गया।

यह सुनकर द्रोणाचार्य के हाथ से अस्त्र गिर गए, पर उन्हें शंका हुई कि कहीं ऐसा करने में भगवान कृष्ण की कोई कूटनीति न हो तो उन्होंने इस समाचार की पुष्टि युधिष्ठिर से करानी चाही। भगवान श्रीकृष्ण जानते थे कि युधिष्ठिर धर्मराज हैं, असत्य नहीं बोल पाएँगे तो उन्होंने युधिष्ठिर से कहा कि द्रोणाचार्य से ये कहें कि अश्वत्थामा मारा गया—नर है कि हाथी, यह मैं नहीं जानता। ऐसा बोलने से असत्य भी नहीं होगा।

युधिष्ठिर ने ऐसा ही किया। द्रोणाचार्य के पूछने पर युधिष्ठिर बोले—"अश्वत्थामा हतो हतः-नरो वा कुंजरो वा।" परंतु उनके नरो वा कुंजरो वा, कहते समय भगवान ने पाञ्चजन्य बजा दिया तो द्रोणाचार्य आधा वाक्य ही सुन पाए और उसे सुनकर उन्हें युद्धस्थल छोड़ना पड़ा। धर्म की रक्षा के लिए कभी-कभी भगवान को भी कूटनीति का सहारा लेना पड़ता है।

गुरु गोविंद दोऊ खड़े काके लागूँ पाँय

समुद्र में नौका विहार के लिए सैकड़ों लोग अलग-अलग नावों में सवार थे। नाविक के हाथों में उनकी नावों की बागडोर थी। समुद्र की अपार जलराशि को देखकर यात्री आनंदविभोर हो रहे थे। समुद्र की सतह पर नावें तेजी से तैर रही थीं। यह सब नौकायन में निष्णात निपुण नाविकों के कारण ही संभव हो पाया था, पर देखते-ही-देखते समुद्र में तूफान उठने लगा।

समुद्र की विशाल जलराशि अथाह जल, समुद्र में उठती लहरें, जिन्हें देखकर यात्री अभी-अभी आनंदित हो रहे थे, वे उन्हें देखकर भयभीत हो उठे। देखते-ही-देखते समुद्र में उठती तेज लहरों ने कई नावों को लील लिया, पर एक नाव ऐसी थी जिस पर सवार यात्री तूफानों और लहरों के बीच भी निश्चिंत थे; क्योंकि वे जिस नाव में सवार थे, उसका नाविक तूफानों और समुद्र की तेज लहरों के बीच से भी नाव को पार निकाल लेने की कला में निष्णात था।

उस नाव में सवार यात्री घंटों तक तूफानों, तेज लहरों के बीच भी नाव में निश्चिंत होकर बैठे रहे और नौका विहार का आनंद लेते हुए अंततः वे नाव के किनारे पहुँचते ही नाव से सुरक्षित पार उतर आए। दरअसल यह संसार भी सागर ही है, समुद्र ही है, जिसमें हम रह रहे हैं। उस समुद्र में सुख और दुःख की तेज और तूफानी लहरें रह-रहकर उठ रही हैं। जो कुशल और निष्णात, निपुण नाविक की नाव में सवार हैं, वे सुख और दुःख की तेज तूफानी लहरों के बीच भी जीवन का आनंद लेते हैं और अंततः उनकी नाव किनारे पहुँच जाती है, उस पार पहुँच जाती है।

जो कुशल नाविक की नाव में सवार नहीं—उनकी नौका का भवसागर से पार हो पाना संभव नहीं। वस्तुतः नाव में बैठने वाले यात्री कोई और नहीं, बल्कि हम ही हैं और ब्रह्मज्ञानी, ब्रह्मनिष्ठ गुरु ही कुशल नाविक हैं, जो हमारी नाव को संसार सागर से, भवसागर से पार कर सकते हैं। बस, शर्त एक ही है—हमारा गुरु के प्रति सर्वस्व समर्पण, संपूर्ण समर्पण। हमारा गुरु के प्रति हमारी अटूट, अटल भक्ति और विश्वास।

यदि ऐसा है तो भगवत्कृपा से हमें ब्रह्मनिष्ठ गुरु की शरणागति प्राप्त होकर रहेगी और ऐसे गुरु की शरणागति से हमारा भवसागर पार हो पाना सुनिश्चित हो जाएगा अर्थात सुख-दुःख और जीवन-मृत्युरूपी चक्रव्यूह से सदैव के लिए मुक्त होकर हमें ब्रह्मानंद की प्राप्ति हो सकेगी।

हम धर्म, अध्यात्म के मर्म को कैसे समझें और कैसे अनुभव करें? पूजा-पाठ, जप-तप-ध्यान करने पर भी जीवन में व्याप्त अतृप्ति को तृप्ति में कैसे बदलें? अपने चित्त को सच्चिदानंद में कैसे लगाएँ? अपने अंतरतम में निहित आनंद के स्रोत सत्-चित्-आनंदस्वरूप परमात्मा को कैसे पाएँ और कैसे अनुभव करें? भय, चिंता, निराशा, शोक, कष्ट, क्लेश आदि से मुक्त जीवन कैसे जिएँ?

निर्भयता, निश्चिंतता और प्रफुल्लता से युक्त जीवन कैसे जिएँ? अपने जीवन को पल-पल आनंद से कैसे महकाएँ? आदि सभी प्रश्नों का एक ही

समाधान है और वह है सद्गुरु, ब्रह्मनिष्ठ गुरु। ऐसे गुरु की शरणागति पाकर शिष्य मानो सब कुछ प्राप्त कर लेता है। शरणागति अर्थात गुरु के प्रति संपूर्ण समर्पण, संपूर्ण भक्ति।

इसमें आधी-अधूरी, भक्ति या समर्पण से काम नहीं चलता। शास्त्र कहते हैं जो सद्भागी शिष्य स्वयं को गुरु के प्रति संपूर्ण समर्पित कर देता है, अपनी इच्छा का परित्याग कर सिर्फ गुरुइच्छा को ही धारण करता है और सर्वदा गुरु के उपदेशानुसार ही जीवन जीता है और सच्ची निष्ठा, श्रद्धा, विश्वास से गुरुसेवा, गुरुकार्य में प्राणपण से जुटा रहता है उसे ज्ञान, कर्म, भक्ति, ध्यान आदि योग के फलस्वरूप ही गुरुकृपा से प्राप्त हो जाते हैं।

वह साधना में शीघ्र सफलता और सिद्धि पाता है और ब्रह्मसाक्षात्कार करने में भी सफल हो जाता है। उस पर माया और अहंकार का कोई असर नहीं होता। वह भौतिक जीवन में सुख-शांति और समृद्धि को प्राप्त करता है और आध्यात्मिक उत्कर्ष को भी। वैसे ही जैसे, देवर्षि नारद जैसे सद्गुरु को पाकर ध्रुव और प्रह्लाद को ब्रह्म की भी प्राप्ति हुई और धन, ऐश्वर्य और राज्यादि सुख भी प्राप्त हुए।

अर्जुन ने अपना सर्वस्व समर्पित कर दिया तो भगवान ने गीता का ज्ञान देकर उनकी अज्ञानता नष्ट कर दी और उन्हें अपने विराट स्वरूप का दर्शन कराया। जब उद्धव को अपने ज्ञान का अहंकार हो गया तो भगवान श्रीकृष्ण ने उन्हें गोपियों के पास भेजकर भक्ति और समर्पण की शक्ति का महत्त्व समझा दिया। हनुमान जी ने विभीषण जी के लिए प्रभुप्राप्ति और राज्यादि की प्राप्ति के लिए भी मार्ग प्रशस्त कर दिया।

श्रीरामकृष्ण परमहंस ने ऐसे ही नरेंद्र की ब्रह्म-पिपासा को तृप्त किया। श्रीअरविंद, श्रीरमण महर्षि और पूज्य गुरुदेव जैसे ब्रह्मनिष्ठ गुरुओं की कृपा से अगणित साधकों, शिष्यों और शरणागतों की ज्ञान-पिपासा, ब्रह्म-पिपासा तृप्त हुई। गुरु के द्वारा सिखाए गए सत्कर्मों के बल पर शिष्य मृत्यु के बाद भी अमर हो जाता है। महाभारत में श्रीकृष्ण भगवान, अर्जुन के गुरु की भूमिका में ही थे।

उन्होंने अर्जुन को हर उस समय थामा, जब वे लड़खड़ाते नजर आए। इसलिए गुरु को ईश्वर से भी, भगवान से भी ऊँचा पद दिया गया है; क्योंकि वे पग-पग पर अपने शिष्य का मार्गदर्शन करते हैं।

दुर्भाग्य मनुष्य का द्वार तब तक खटखटाता है, जब तक वह उसे खोल न दे, जबकि सौभाग्य एक बार द्वार खट-खटाकर धीरे से चला जाता है।

अतः हमें हर शुभ अवसर के लिए सदैव सजग और तैयार रहना चाहिए।

गुरु को ब्रह्मा कहा गया है; क्योंकि वह शिष्य को अपने ब्रह्मज्ञान से नया जन्म देते हैं।

गुरु विष्णु भी हैं; क्योंकि वे शिष्य की रक्षा करते हैं, उसका पोषण करते हैं। गुरु महेश्वर भी हैं क्योंकि वे शिष्य के दोषों का, विकारों का, अज्ञान का संहार करते हैं। इसलिए तो गुरु को सर्वोच्च पद प्राप्त है।

यदि गुरु और भगवान दोनों एक साथ खड़े हों, तो पहले किसके चरण स्पर्श करें? इसके उत्तर में कबीरदास जी कहते हैं—

गुरु गोविंद दोऊ खड़े, का के लागूँ पाँय।
बलिहारी गुरु आपने, जिन गोविंद दियो बताय॥

अर्थात मैं पहले गुरु को प्रणाम करूँगा; क्योंकि गुरु ने ही गोविंद तक पहुँचने का मार्ग बताया है।

सचमुच कबीर को कबीर बनाने में उनके गुरु रामानंद जी की महती भूमिका थी। रामानंद जी ने ही उन्हें पंथ-संप्रदाय आदि से ऊपर उठकर देखने की शक्ति प्रदान की। कबीरदास जी ने सद्गुरु की कृपा को अपने जीवन में प्रत्यक्ष अनुभव किया। इसलिए उन्होंने गुरु के प्रति संपूर्ण समर्पण को महत्त्वपूर्ण माना और कहा है—

मनहिं दिया निज सब दिया,
मन के संग शरीर।
अब देवे को क्या रहा,
यों कवि कहहिं कबीर॥
जग भव सागर माहिं,
कहु कैसे बूड़त तेरे।
गुहु सतगुरु की बाहिं,
जो थल रक्षा करै॥

अर्थात यदि तूने अपना मन गुरु को दे दिया तो जानो सब दे दिया; क्योंकि मन के साथ ही शरीर है, वह अपने आप समर्पित हो गया। अब देने को रहा ही क्या? संसार-सागर में डूबता हुआ जीव कहाँ, कैसे तरेगा? उत्तर यही है कि सद्गुरु का हाथ पकड़ो, जो सर्वत्र रक्षा करने वाले हैं।

अस्तु यदि आप गुरु के प्रति संपूर्ण समर्पण करते हैं तो गुरु आपकी जीवन नैया को भवसागर से पार कर देते हैं। वे आपकी अंतरात्मा में बस जाते हैं और पल-पल आपका मार्गदर्शन करते हैं। गुरु और शिष्य का रिश्ता समर्पण के आधार पर ही टिका होता है।

जीवन समर को पार करने के लिए भी गुरु ही सच्चे सारथी होते हैं। गुरु साधारण शिष्य को भी असाधारण बना देते हैं। तुच्छ को भी महान बना देते हैं। अस्तु ऐसे सद्गुरु, ब्रह्मज्ञानी, ब्रह्मनिष्ठ गुरु की शरणागति पाना जीवन की सर्वोच्च उपलब्धि है। ❑

प्रजापति त्वष्टा के पुत्र का नाम विश्वरूप था। उनका हृदय सरल व निष्पाप था। वे यज्ञ में आहुति दे रहे थे कि राक्षसों ने उनसे आकर विनती की कि आप यज्ञ का भाग हमें भी दें। विश्वरूप को ऐसा करने में कुछ विशेष समस्या दिखाई नहीं पड़ी। उन्होंने यज्ञ का भाग राक्षसों को देना शुरू किया। यज्ञ का भाग मिलने से राक्षस बलशाली हुए तो देवराज इंद्र ने विश्वरूप का वध कर डाला। यह प्रजापति को सही नहीं लगा, सो इंद्र को दंड देने के उद्देश्य से उन्होंने यज्ञ का आयोजन किया।

यज्ञ मंत्रों में आह्वान किया इंद्र को मारने वाला शत्रु पैदा हो, परंतु बोलने में जरा-सी अशुद्धि होने के कारण इंद्र-शत्रु विवर्धस्व (इंद्र-शत्रु विर्विर्धस्व के स्थान पर) निकल गया, जिसका अर्थ है—इंद्र से मरने वाला। आह्वान के फलस्वरूप वृत्रासुर पैदा हुआ, जिसे मारने के लिए महर्षि दधीचि ने अपनी अस्थियों को दान देकर 'वज्र' नामक आयुध बनवाया। वृत्रासुर ने मरते समय वज्र को नमन किया और बोला—"इंद्र! तू मुझे मारकर लौकिक सुखों का स्वामी बनेगा और मैं उनके आयुध से मरकर उनका चारण बनूँगा, यह मेरे लिए अत्यंत सौभाग्य की बात होगी।" इसीलिए वृत्रासुर को मरणोपरांत भगवान के गणों में स्थान मिला।

करुणा की प्रतिमूर्ति—संत तुकाराम

सच्चे संत पीड़ित मानवता की पीड़ा को अपनी आत्मा में सच्चाई के साथ अनुभव करते हैं और मानव मात्र की पीड़ा को दूर करने हेतु व्याकुल हो जाते हैं। वे दूसरों की पीड़ा को गहराई से अनुभव करते हैं; क्योंकि भगवत्प्राप्त संत स्वयं को सबमें और सबको स्वयं में देख पाते हैं। वे सभी जीवों में भगवान को ही देखते हैं। वे अपनी निजी सुख-सुविधा, परिजन, प्रियजन आदि के प्रति मोह से मुक्त होते हैं; क्योंकि उन्हें यह सारा संसार ही अपना प्रियजन, परिजन जान पड़ता है।

उनकी भगवद्भक्ति का उद्देश्य भी निज का कल्याण नहीं, बल्कि जनकल्याण ही होता है। संत तुकाराम भी उन्हीं संतों में एक रहे हैं, जिन्होंने अपना सर्वस्व त्यागकर स्वयं को समाज की सेवा में तिल-तिल गला दिया। संसार की सुख-शांति के लिए ही उन्होंने भगवान की भक्ति की और उसी के लिए जिए तथा मरे। उन्हें अपनी व्यक्तिगत सुख-शांति, सिद्धि-समृद्धि अथवा मोक्ष आदि की कोई इच्छा नहीं थी।

महाराष्ट्र के पूना में इंद्रायणी नदी के तट पर देहु नामक ग्राम में जन्मे संत तुकाराम अपने तप-त्याग तथा परमार्थ साधन से अपने में ब्राह्मणत्व उत्पन्न कर **'सर्वजन हिताय-सर्वजन सुखाय'** हेतु जिए और मरे। पहले-पहल जब इन्होंने भगवद्भजन तथा पूजा-पाठ प्रारंभ किया तो गाँव के रूढ़िवादी व जातिवादी दृष्टिकोण के लोगों ने इनका घोर विरोध किया और इनको तरह-तरह के त्रास दिए, किंतु भगवद्भक्ति-भगवद्भजन का रस अनुभव कर लेने वाले संत तुकाराम तनिक भी विचलित न हुए।

वे रूढ़िवादियों का तिरस्कार तथा दंड सहन करते हुए भी भगवद्भक्ति-भगवद्भजन में लगे रहे। संत तुकाराम यह अच्छी तरह समझते थे कि रूढ़िवादियों के पास विवेक की कमी होती है अत: वे उनसे उलझने, वाद-विवाद, प्रतिवाद करने में अपना मन व समय खराब करने के बजाय भगवद्भक्ति में लगे रहना ही श्रेयस्कर समझते थे। संत तुकाराम सब कुछ शांतिपूर्वक सहते रहे एवं कभी भी भगवद्भक्ति से विचलित न हुए।

एक बार कुछ लोगों ने उन्हें गाँव से बाहर निकालकर गाँव में उनका प्रवेश वर्जित कर दिया। इस अकारण निर्वासन के बावजूद भी वे गाँव के बाहर एक शिला पर बैठे हुए तेरह दिन तक भगवद्भजन करते रहे। संत तुकाराम का ऐसा घोर तप देखकर विरोधी शरमिंदा हुए और उन्हें एक सच्चा महात्मा मानकर उन पर अत्याचार करना बंद कर दिया। भजन के प्रभाव से भगवान की यह अनुकंपा देखकर संत तुकाराम का ध्यान और अधिक भगवान की ओर लग गया।

वे ज्यों-ज्यों भगवान में तन्मय होते गए, त्यों-त्यों उनके हृदय में अहिंसा, सत्य तथा जनसेवा के भाव बढ़ते चले गए—जिससे दीन-दु:खियों की सेवा करना उनके भगवद्भजन का एक विशेष अंग बन गया। वे राह चलते राहगीरों के सिर का बोझ अपने सिर पर ले लेते और उनको अपने गंतव्य स्थान तक पहुँचा देते। किसानों के खेतों की रखवाली करते, उन्हें खेत जोतने, बीज बोने में मदद करते।

किसी के बैलों तथा किसी की गायों के लिए घास काट लाते और उन्हें अपने हाथ से बड़े

प्रेम से खिलाते। वे तीर्थयात्रियों के सूजे हुए पैरों को अपने हाथ से धोते और घंटों तक उनकी सिकाई करते।

वे पैदल गाँव-गाँव की यात्रा करते और जहाँ भी किसी रोगी, अपाहिज, अनाथ, दीन-दुःखी को देखते—वहीं रम जाते और दिन-रात उनकी सेवा करते। वे ऐसा इसलिए कर पाते; क्योंकि वे सबमें नारायण को देखते, भगवान को देखते, स्वयं को देखते।

इस प्रकार संत तुकाराम की भगवद्भक्ति और जनसेवा प्रगाढ़-से-प्रगाढ़ और गहरी होती गई। वे भगवान के प्रेम में, प्रीत में मग्न होते गए, भगवान के ध्यान में मग्न, ध्यान में लीन होते गए और अंततः उन्हें सच्ची भक्ति के फलस्वरूप भगवत्प्राप्ति हुई। उन्हें भगवान ने दर्शन दिए। भगवत्प्राप्ति होने से उन्हें हृदय में, आत्मा में अलौकिक आनंद, ब्रह्मानंद की अनुभूति हुई। उनका रोम-रोम पुलकित हो उठा।

वे सदैव उसी दिव्य भावावेश में रहने लगे और भगवद्भजन करते रहे। धीरे-धीरे उनकी कीर्ति दूर-दूर तक फैलने लगी। लोग उनके उपदेश और कीर्तन, भजन देखने-सुनने आने लगे। गाँव के सभी जाति-वर्ण के लोग भ्रातृत्व भाव से भरकर मिल-जुलकर कीर्तन करते। उनमें आपस में ऐसा प्रेम उत्पन्न हो गया कि पूरा-का-पूरा गाँव एक परिवार की तरह दीखने लगा। जहाँ पहले लड़ाई-झगड़े होते रहते थे, वहाँ अब प्रेम की गंगा बहने लगी।

संत तुकाराम लोगों को भक्ति का उपदेश देते, त्याग और वैराग्य की प्रेरणा करते, किंतु उनके त्याग का मार्ग निवृत्ति नहीं प्रवृत्ति था। वे कभी भी किसी को अपने कर्त्तव्य का त्याग कर भजन-कीर्तन करते रहने को नहीं कहते, बल्कि अपना स्वधर्म, स्वकर्त्तव्य निभाते हुए, कर्त्तव्य कर्म करते हुए भगवद्भक्ति-भगवद्भजन करने को कहते। धीरे-धीरे तुकाराम की कीर्ति पूरे महाराष्ट्र में फैल गई।

एक बार छत्रपति शिवाजी उनके दर्शनों के लिए आए और उनका कीर्तन सुनकर सारा राज-काज छोड़कर वैरागी होने को तैयार हो गए, किंतु संत तुकाराम ने उन्हें प्रवृत्ति मार्ग का सच्चा स्वरूप समझाकर अपना कर्त्तव्य, कर्म तथा भगवद्भक्ति, दोनों करते रहने की प्रेरणा दी।

वे जानते थे कि निवृत्ति एक विशेष प्रकार के संस्कार वाले लोगों के लिए संभव है। यह सभी प्रकार के लोगों के लिए न तो उपयोगी है और न ही अनिवार्य। साधारण स्थिति के लोग तो निवृत्ति मार्गी बनकर और भी भटक जाते हैं।

धर्मः कायवाङ्मनोभिः सुचरितम्।
अधर्मः कायवाङ्मनसादुष्टचरितम्।

—सुश्रुत संहिता

अर्थात— मन-वाणी-शरीर का जो सुंदर व्यवहार है, वह धर्म है और मन-वाणी-शरीर का जो दुर्व्यवहार है, वह अधर्म है।

कई जन्मों की साधना से उपजी वैराग्य की भावना, वैराग्य के संस्कार से संपन्न होने के कारण ही कुछ लोग जन्मजात वैरागी होते हैं और निवृत्ति मार्गी होते हैं। इस प्रकार संत तुकाराम तैंतालीस वर्ष की आयु तक महाराष्ट्र में, जन-जन में, स्वधर्म व भगवद्भक्ति की ज्योति जलाकर, नवजीवन का जागरण कर, लोगों में नई चेतना जगा करके एक दिन स्वयं कीर्तन करते-करते परमधाम चले गए। सचमुच त्याग, तपस्या और करुणा की प्रतिमूर्ति थे संत तुकाराम। ❑

परमात्मा की परम सत्ता

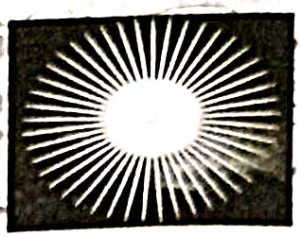

परमात्मा बुद्धिगम्य नहीं, भावगम्य हैं। ब्रह्म अर्थात भगवान क्या हैं? संसार की वास्तविकता क्या है? जीवात्मा की प्रकृति क्या है? इन तीन प्रश्नों के माध्यम से ईश्वर, जीव और प्रकृति की वास्तविकता को समझने का प्रयास किया जाता है। ईश्वर की महिमा अपरंपार है।

उपनिषद् में आता है कि जो व्यक्ति यह कहता है कि वह ईश्वर को समझ चुका है, तो समझो वह झूठ बोल रहा है, क्योंकि इतने विशाल ब्रह्मांड की रचना करने वाले को पूरी तरह समझना संभव ही नहीं है। इसके विपरीत, जो व्यक्ति कहता है कि वह ईश्वर को समझ ही नहीं सका, तो ऐसे व्यक्ति ने तो स्वीकार कर ही लिया कि ईश्वर को समझा नहीं जा सकता।

ईश्वर को समझने से अधिक आवश्यकता है, ईश्वर से प्रेम करने की। ईश्वर को समझने का प्रयास और ईश्वर से प्रेम, दोनों ही कार्य संसार की वास्तविकता और जीवात्मा की मूल प्रकृति को समझने से संभव हो सकते हैं। ईश्वर, जीव और प्रकृति का सत्य स्वरूप क्या है? क्या इन तीनों की पृष्ठभूमि में कोई एक समान तत्त्व है या ये तीनों अलग-अलग स्वतंत्र सत्ताएँ हैं।

अर्जुन जब युद्ध के दृश्य को देखकर किंकर्त्तव्यविमूढ़ हो रहा था तब वह समझ नहीं पा रहा था कि युद्ध करना चाहिए या नहीं? ऐसी परिस्थिति में योगीराज श्रीकृष्ण ने अपने ज्ञान के बल पर वैदिक जीवन पद्धति का सार गीता के रूप में अर्जुन के समक्ष प्रस्तुत किया।

गीता का सारांश यही है कि व्यक्ति को निष्काम भाव से अपने विवेक का प्रयोग करते हुए अपने सामने आने वाले कर्म को संपन्न करना चाहिए। कर्म के परिणामस्वरूप मिलने वाले फल पर ध्यान नहीं देना चाहिए। इस सिद्धांत के अनुसार चलने वाले व्यक्ति की सीधी और सुदृढ़ आस्था ईश्वर के प्रति बन जाती है। योगदर्शन में इसी आस्था को 'ईश्वरप्रणिधान' अर्थात ईश्वर के प्रति पूर्ण समर्पण के रूप में व्यक्त किया गया है।

ईश्वर के प्रति पूर्ण समर्पण केवल ज्ञान या समझ के आधार पर नहीं आ सकता, इसके लिए ईश्वरीय शक्ति के प्रति एक निर्मल प्रेम-भाव भी आवश्यक है। ईश्वर के प्रति निर्मल प्रेम-भाव ही गीता का योगदर्शन है। यही प्रेम-भाव वेदांत और चारों वेदों का सार है।

इस प्रेम-भाव को मन में धारण करके यदि कोई ईश्वरप्रेमी प्रकृति की किसी वस्तु जैसे—वृक्ष या सूर्य, चंद्र, आकाश, वायु, जल, पृथ्वी आदि से पूछे कि तुम कितने शक्तिशाली तत्त्व हो? तुम्हारी शक्ति का स्रोत अर्थात दाता कौन है? इन सब प्रश्नों का सरल उत्तर प्राप्त होगा कि प्रकृति की सारी शक्तियों का मूलस्रोत ईश्वर के अतिरिक्त और कुछ नहीं है।

प्रकृति की अनगिनत वस्तुओं में अनेकों भिन्नताओं के बावजूद उन सबका पिता अर्थात उनका रचयिता केवल एक परमपिता परमेश्वर है। उस सर्वोच्च सत्ता को भी भले ही अनेकों नामों से संबोधित किया जाए, परंतु वह सत्ता अपने आप में

एक ही सत्ता है, जो सर्वत्र विद्यमान अर्थात सारी सृष्टि के कण-कण में समायी हुई है।

इस साधारण ज्ञान के स्तर पर खड़े होकर जब व्यक्ति कण-कण में भगवान को महसूस करने लगता है, तो भगवान का प्रेम उस व्यक्ति के माध्यम से सारी सृष्टि को भी मिलने लगता है।

इसी प्रकार जब हम मानव शरीर या किसी भी प्राणी के शरीर पर ध्यान लगाएँ, तो हम यह सरलता के साथ समझ सकते हैं कि इस शरीर का एक-एक श्वास ब्रह्मांड की शक्ति से ही हमें प्राप्त हो रहा है। प्रत्येक श्वास के साथ वह ब्रह्मांडीय शक्ति हमारे शरीर में प्रवेश करती है और प्रत्येक प्रश्वास के साथ वह शक्ति अंदर की प्रदूषित वायु को बाहर निकाल देती है।

श्वास-प्रश्वास का यह कार्य हमारी बुद्धि या बल के आधार पर नहीं चलता। यह अनैच्छिक कार्य केवल ईश्वर की शक्ति और इच्छा से ही चल रहा है। सृष्टि के सारे प्राणी एक ही ब्रह्मांडीय शक्ति से ही जीवन प्राप्त कर रहे हैं।

बाहर दिखाई देने वाली अनेकों भिन्नताओं— भिन्न-भिन्न मत-पंथ, भिन्न-भिन्न योनि रूप, नर या मादा आदि के बावजूद हम सबके जनक और श्वासों के माध्यम से पालनकर्त्ता केवल एक ही सर्वोच्च सत्ता है, जिसे हम ईश्वर कहकर प्रेम से अभिभूत हो जाते हैं।

इस प्रेम के बल पर जब हम सृष्टि के अन्य जीवों को देखते हैं, तो भगवान का प्रेम हमारे माध्यम से उन सब जीवों को भी स्वाभाविक रूप से मिलने लगता है। प्रकृति और जीव की सत्ता दिखने में स्वतंत्र दिखाई देती हो, परंतु वास्तव में सारी सृष्टि के प्रथम पिता के रूप में भगवान की सत्ता के अतिरिक्त अन्य कुछ भी नहीं है।

हमें अपने विवेक का प्रयोग भी केवल उस विशाल ईश्वरीय शक्ति के चिंतन और उस पर ध्यान एकाग्र करने में ही करना चाहिए। ऐसा करने से हमारे बुद्धि और विवेक भी उस ईश्वरीय व्यवस्था के अनुकूल ही आचरण करने लगते हैं। एक माने में हमारे जीवन को ईश्वररूपी पथ-प्रदर्शक स्थायी रूप से मिल जाते हैं।

इस समस्त संसार का मूल परमात्मा है, परंतु हम संसार के विभिन्न रूपों में इतना निमग्न हो जाते हैं कि उसकी सत्ता का आभास ही नहीं होता है। यह आभास केवल पवित्र भावनाओं के माध्यम से संभव है। ❑

यदि आपको सुख-शांति, मुस्कराहट चाहिए तो अपना दृष्टिकोण बदलिए। खुशी सब ओर बाँट दीजिए। आपकी परिस्थितियाँ नहीं हैं देने की, किंतु आप सोने से भी कीमती, आदमी की खुशी बाँट सकते हैं। आप जानते नहीं हैं कि आज आदमी खुशी के लिए तरस रहा है। जिंदगी की लाश इतनी भारी हो गई है कि वजन ढोते-ढोते आदमी की कमर टूट गई है।

वह खुशी ढूँढ़ने के लिए सिनेमा, क्लब, रेस्टोरेंट सब जगह जाता है, पर वह कहीं मिलती नहीं; जबकि खुशी दृष्टिकोण है, जिसे मैं ज्ञान की संपदा कहता हूँ। वही व्यक्ति ज्ञानवान होता है, जिसे खुशी तलाशना व बाँटना आता है। ज्ञान पढ़ने-लिखने को नहीं कहते। वह तो कौशल है। ज्ञान अर्थात नजरिया, दृष्टिकोण, व्यावहारिक बुद्धि।

—परमपूज्य गुरुदेव

पर्व विशेष-नवरात्र

दिव्यता का पर्व—नवरात्र

नवरात्र दिव्यता एवं पावनता का पर्व है। पूरे विश्व के प्रमुख धर्मों में परमात्मा को एक पिता, एक पुरुष की तरह पूजा जाता है, परंतु भारत ही एक ऐसा अद्वितीय और अलौकिक देश है, जहाँ उस परब्रह्म को एक स्त्री-शक्ति के रूप में, एक माता के रूप में भी स्वीकार किया गया है। स्त्रैण और पुरुषैण, यह दोनों शक्ति के ही स्वरूप होते हैं। माता और पिता के संयोग से संतान उत्पन्न होती है, उसी प्रकार शक्ति के स्वरूप का आधार शिव और शिव की कार्यशक्ति को ही हम देवी शक्ति कहते हैं।

कह सकते हैं कि प्रकृति स्त्रैण है और परब्रह्म परमात्मा पुरुष है। प्रकृति और पुरुष के समागम से ही इस सारे संसार का निर्माण, पोषण और संहार होता है। नवरात्र के इन नौ दिवसों में आध्यात्मिक प्रवृत्ति के समस्त श्रद्धालु दुर्गा के नौ स्वरूपों का पूजन करते हैं। शैलपुत्री, ब्रह्मचारिणी, चंद्रघंटा, कूष्मांडा, स्कंधमाता, कात्यायिनी, कालरात्रि, महागौरी, सिद्धिदात्री—ये देवी के नौ स्वरूप हैं।

देवी का एक आलंकारिक स्वरूप वर्णित किया जाता है—जैसे वे शेर की सवारी करती हैं। शेर की सवारी का अर्थ है—शौर्य, वीरता और साहस रखने वालों को ही देवी का यह आध्यात्मिक स्वरूप प्राप्त होता है। साधना करना बहुत शौर्य का कार्य है। आज मानव मन, इंद्रियाँ और विषय-भोगों में फँसा हुआ है। वासना में अंधा होकर इस असत्य संसार को ही सत्य जान रहा है। ऐसे में देवी की महान कृपा की आवश्यकता है।

जिसके अंत:करण में विशेष उत्साह और पौरुष जगेगा, वही अपने आप को समस्त बंधनों से काटकर देवी को जानने, समझने, अपने भीतर के देवत्व को हृदयंगम करने को तत्पर हो सकता है। देवी शेर की सवारी करती हैं। इसका अर्थ है जिस भक्त के अंत:करण में साहस, शौर्य और दृढ़ संकल्परूपी शेर होता है, उसी को परमात्मा की अनुभूति हो पाती है।

देवी का प्रथम स्वरूप शैलपुत्री दुर्गा का कहा गया है। इसमें भी साधक के लिए एक बड़ा गहरा संदेश है, वह यह कि पर्वत का आधार स्थिर हो। सत्य का बोध करने वाला हो। जो कभी नहीं बदलता, वही सत्य है, वही दैवी है। उसी दैवी भाव की आराधना करने वाला स्थिर, शांत और शीतल स्वभाव का हो जाता है।

देवी का दूसरा स्वरूप ब्रह्मचारिणी है, जिसका हम साधकों के लिए बड़ा गहन संदेश है कि हम अपनी इंद्रियों पर, अपने मन पर नियंत्रण करना जानते हों। ऐसा नहीं कि संसार का आकर्षण है और उसको जबरदस्ती साधक दबाता है—सत्य तो यह है कि साधक के लिए यह सारा संसार एक जलती हुई ज्वाला है। एक दिन वह ज्वाला सब कुछ समाप्त कर देगी; क्योंकि यहाँ तो सब कुछ मरणशील है।

संसार के इस स्वभाव को जानने-समझने के बाद कौन, कोई भी मन, इंद्रियों की तृप्ति के लिए इस संसार में अपने आप को नहीं देख पाएगा। ब्रह्मचर्य का पालन एक सजा नहीं है, एक ऐसा चुनाव है, जो साधक स्वयं के लिए करता है। उसकी साधना से उत्तरोत्तर ऊर्ध्वमुखी उन्नति होती है। उस उन्नति के लक्ष्य को अपने समक्ष रखते हुए साधक ब्रह्मचर्य का आचरण करता है।

देवी चंद्रघंटा भी साधक के मन में एक गहरा आध्यात्मिक गूढ़ संकेत देती है। अज्ञानी मन

अमावस्या की कालरात्रि का आधार है, परंतु साधना, तपस्या करने से उसके भीतर सर्वप्रथम अर्द्धचंद्रमा ही जाग्रत होता है।

योग के ग्रंथों में योग के गूढ़ रहस्य हैं। इनमें से एक रहस्य यह है कि आज्ञाचक्र से और थोड़ा ऊपर शिखा की तरफ एक और चक्र होता है, जिसे हम कहते हैं—बिंदुचक्र।

यह बिंदु अर्द्धचंद्रमा का आधार है। इसका अर्थ यह होता है कि जो साधक अपनी धारणा शक्ति के द्वारा मंत्र, यंत्र और तंत्र का अभ्यास करता है, उसका बिंदु चक्र जाग्रत होता है। इस बिंदुचक्र से अमृत का पान कर वह अत्यंत आनंद, स्थिरता और शांति की अनुभूति को प्राप्त करता है।

देवी के इन नौ स्वरूपों का सीधा संबंध हमारे अंत:करण और हमारी आज की उस स्थिति से है, जहाँ आज अंधकार है। अभी वासनाओं के असुरों के दल, जो हमारे मन के ही भीतर हैं, मन को ही घायल कर रहे हैं। हमारे मन की दैवी शक्तियाँ सुप्त हैं।

इन असुरों के तांडव-नृत्य को समाप्त करने हेतु हमें दैवी-शक्तियों को जाग्रत करना होगा और इन दैवी-शक्तियों को जाग्रत करने के लिए देवी की उपासना सर्वोपरि कही गई है।

हमें अपने जीवन में साहस ही नहीं, बल्कि शांति, कूटस्थता, स्थिरता और गंभीरता की जरूरत है। कोई भी व्यक्ति जिसके जीवन में आत्मसंयम, नियम और अनुशासन नहीं है—वह किसी भी प्रकार की उन्नति नहीं कर सकता है। अंधकार में भटक रहे मन के लिए विश्रांति प्रदान करने वाले जप-तप की सभी को आवश्यकता है।

इसलिए दुर्गा के इन नौ स्वरूपों की आराधना इन नौ दिनों में जो साधक करेंगे, वे अपने जीवन में देवी की परम कृपा को प्राप्त होंगे। इस परम शक्ति के साथ अपने मन को जोड़ने का अवसर है—नवरात्र।

देवी प्रतीक हैं—शक्ति का, सौंदर्य का। देवी प्रतीक हैं—विद्या का, समाधि का। देवी प्रतीक हैं—व्रत का, अनुशासन का। देवी प्रतीक हैं—अध्यात्म की सर्वोत्कर्ष उपलब्धियों का। देवी प्रतीक हैं—सिद्धियों का।

कोई भी मानव अपने जीवन में शक्ति, विद्या, धन, गुण, अनुशासन, संयम, ज्ञान-चिंतन, शास्त्र-चिंतन, आत्मचिंतन के बिना प्रगति नहीं कर सकता है, इसलिए देवी की आराधना का उद्देश्य मानव के अंदर छिपी हुई उन रहस्यमयी दिव्य शक्तियों को जाग्रत करना है।

नवरात्र के इन नौ दिनों में जो व्यक्ति श्रद्धा-भावना से परिपूर्ण होकर नियम से जप, शौच, अहिंसा, स्वाध्याय, चिंतन का अभ्यास करता है—वह उन्नति, प्रगति करता है।

उसकी अपनी गूढ़तम दिव्य शक्तियाँ जाग्रत होती हैं। फिर इस देवत्व को प्राप्त कर वह अपने जीवन को एक नई दिशा, एक नई उमंग, एक नई तरंग प्रदान कर सकता है।

देवी हमसे बाहर नहीं हैं। देवी हमारे भीतर हैं। शिव हमसे अन्यत्र नहीं हैं। शिव भी हमारी ही परम चेतना हैं। अपने अंदर मौजूद इस शिव और शक्ति की पहचान करने का यह दुर्लभ अवसर विरले सौभाग्यशालियों को मिलता है। मानव अधिकतर देह से संबंधित इच्छाओं, अभिलाषाओं की ही पूर्ति करने में अपना सारा जीवन व्यर्थ गँवा देता है।

पुण्यात्मा मानवों के जीवन में अवसर आता है। उस अवसर से वे अपने अंदर मौजूद उस परम आदिशक्ति की पहचान कर पाते हैं एवं उस शक्ति की दिव्य लीला का अनुभव करके धन्य होते हैं। अत: हमें भी श्रद्धा-भक्तिपूर्वक नवरात्र में गायत्री का अनुष्ठान करना चाहिए। ❑

एकमात्र सत्य परमात्मा हैं

साभ्रामति और चंद्रभागा नदी के संगम तट पर एक छायादार वृक्ष के नीचे शिलातल पर महर्षि दधीचि बैठे थे। ब्रह्मा के पुत्र अथर्व ऋषि की संतान दधीचि अपनी उग्र एवं प्रचंड तपस्या के लिए तीनों लोकों में प्रख्यात थे। महर्षि की दृष्टि दीर्घ अंतराल के पश्चात नदी की धारा पर स्थिर हो गई थी। ग्रीष्म की यह शुभ्र-शांत बहती चंद्रभागा नदी विरहिणी-सी लग रही थी। सोच में पड़कर वह ऋषि के सामने रुक-सी गई। पूछ रही थी जैसे—'मैं कहाँ से आई हूँ और कहाँ जाना है? बहते हुए जन्म-जन्मांतर बीत गए, पर आज अपना पता पाने को जी बहुत अकुला गया है।'

'ओ नदी! बहती रहो अपने में अविकल। रुको नहीं, सोचो नहीं, पूछो नहीं, एक दिन स्वयं ही जान लोगी कि कौन हो तुम? कहाँ है तुम्हारा उद्‌गम? क्यों है तुम्हारा अभिगम? कहाँ है तुम्हारा निर्गम.... ?' आषाढ़ मास के पहले बादल गरजने लगे। धरती के गर्भ में व्याकुलता छा गई थी कि वह मेघ के उल्कावेध से बिद्ध हो, नवजीवन को धारण करे एवं असंख्य अंकुरों और जीवाणुओं में प्रस्फुटित हो।

दिशाएँ किसी वज्रभेदी शंखनाद से थर्रा उठीं। घनघोर गरजते मेघों का ब्रह्मांडी डमरू बजने लगा। मूसलाधार वर्षा आरंभ हो गई। ऋषिवर दधीचि की बाह्य चेतना जाने कब तिरोहित हो गई, पता ही नहीं चला। वे दृष्टिमान रह गए। दूरवर्ती एक टीले पर बैठे व देख रहे हैं कि प्रकृति में कितना नैसर्गिक सौंदर्य भरा पड़ा है, परंतु प्रकृति जड़ है। इस वज्रीभूत जड़त्व के भीतर चैतन्य की ज्योति जलाए बिना विस्तार नहीं है।

ऋषि इस तथ्य से सुपरिचित थे। वे अपने ही अस्तित्व की अतल गहराइयों में उतरकर जाने क्या प्रयोजन कर रहे थे। ऋषिवर को समस्त ब्रह्मांड—परमात्मा की ऊर्जा के सघन पुंज के समान प्रतिबिंबित हो रहा था। वे इस प्रकाशपुंज को धरा पर अवतरित करना चाहते थे, जिससे धरती परमात्मा के प्रकाश को धारण कर सके तथा मानव में देवत्व का उदय हो सके। इतने में चुपके से दबे पाँव किसी के आने की आहट हुई। ऋषिवर ने पूछा—'कौन हैं? सामने प्रकट हों।' सामने देवाधिदेव विष्णु खड़े थे।

पीतांबरधारी विष्णु ने अपने आगमन का कारण तो स्पष्ट नहीं किया, परंतु वे वहीं खड़े रहे। अतल ब्रह्मांड की अविज्ञात गहराई में खोए ऋषिवर का मन कहीं और लगा हुआ था। वे केवल भगवान विष्णु को देख रहे थे। इससे भगवान विष्णु के अहंकार को ठेस लगी कि सृष्टि की संचालन शक्तियों में से एक की, एक ऋषि ने इस तरह उपेक्षा की। शिष्टाचार का अभाव होने से उनका आहत अहंकार फुफकारने लगा। उन्हें तो लगा था कि दधीचि उनका अभिवादन करेंगे, पास बैठाकर उनके आगमन का कारण पूछेंगे, परंतु यहाँ तो सब कुछ उलट था।

वे कहीं और ही खोए हुए थे। वे तो परमात्मा और प्रकृति को अनुभव कर रहे थे। विष्णु भगवान का आहत अहंकार आपे से बाहर होने लगा। वे आवेशित हो उठे। उन्होंने दधीचि को काफी खरी-खोटी सुनाना प्रारंभ कर दिया। ऋषिवर शांत थे। मान, अपमान, अहंकार से वे ऊपर उठ चुके थे। वे सोच रहे थे कि जब तक प्रकृति बदल नहीं जाती, तब तक अपार ऋद्धि-सिद्धि, वैभव से संपन्न देवता भी इनसान के समान व्यवहार करते हैं, जैसे विष्णु भगवान

कर रहे हैं। फुफकारते अहंकार ने उनके विवेक का हरण कर रखा था।

अपने तीव्र कटाक्ष पर दधीचि पर कोई प्रभाव न पड़ते देख उद्वेलित विष्णु भगवान ने कहा—"देखें ऋषिवर! मेरा विश्व रूप।" उन्होंने अपने शरीर में संपूर्ण देवों को तथा अनेक भूतों के समुदायों को, कमल के आसन पर विराजित ब्रह्मा को, महादेव को और संपूर्ण ऋषियों को तथा दिव्य सर्पों को दिखाया। उन्होंने स्वयं को आदि, मध्य एवं अंत से परे कर अनंत कर दिया। वे विकराल और प्रलयंकारी अग्नि के समान प्रज्वलित हो रहे थे।

इस प्रकार अपना विराट स्वरूप दिखाने के बाद वे फिर से अपने चतुर्भुज रूप में प्रकट हो गए। उन्हें विश्वास था कि इससे दधीचि अत्यंत प्रभावित होंगे। शांत-मौन दधीचि के अधरों पर मुस्कराहट तैर गई।

ऋषि ने विष्णु को कहा—"ये जो आपने विश्वरूप के दर्शन कराए हैं, यह चमत्कार किसी और को दिखाएँ। अगर आप हमारा सही स्वरूप देखना चाहते हैं तो यह प्रदर्शन भी देख लें।"

ऋषिवर ने जब अपना विराट रूप दिखाया, तो उस रूप में ब्रह्मांडों की उत्पत्ति बुलबुले के समान उठ रही थी और विलीन हो रही थी। जब उन्होंने एक बुलबुले रूपी ब्रह्मांड को बड़ा किया, तो उसमें एक साथ हजारों विष्णु के विश्वरूप के दिग्दर्शन हुए।

इस रूप में परमात्मा का अनंत रहस्य प्रकट हो रहा था, जिससे कि स्वयं विष्णु भी अपरिचित एवं अनभिज्ञ थे। दधीचि के इस रूप के दर्शन करने के बाद विष्णु जी उन्हें प्रणाम करके जाने लगे। ऋषिवर ने उन्हें अनंत की अनंतता दिखा दी थी।

उन्होंने जता दिया था कि परमात्मा की कृति अनंत रहस्यों से आवृत है, जिसे केवल तपस्या के माध्यम से ही अनावृत किया जा सकता है। दधीचि ने विष्णु जी से कहा—"इस सृष्टि में तपस्या का ही महत्त्व है। तप के बल पर कुछ भी संभव है; असंभव कुछ भी नहीं है, परंतु इस तपस्या का उपयोग सृष्टि के कल्याण के लिए करना चाहिए। अपने दंभ में किसी को नीचा दिखाने या अधर्म का साथ देने में नहीं करना चाहिए। आप पर तो सृष्टि-संचालन की अभूतपूर्व जिम्मेदारी है, अतः आपको इस प्रकार का प्रदर्शन शोभा नहीं देता।" विष्णु भगवान को कुछ सूझ नहीं रहा था कि क्या कहें ?

ऋषिवर ने आगे कहना प्रारंभ किया—"दंभ और अहंकार तो अंदर के विकार हैं। यह भक्ति के द्वारा ही समाप्त होता है। आप तो भक्ति की भावधारा से सर्वथा परिचित हैं। भक्ति एवं तप के द्वारा परमात्मा की कृपा प्राप्त होती है और यही धर्म-मार्ग है। अतः किसी तपस्वी या ऋषि को कभी भी किसी रूप में भयभीत करने का प्रयास न ही करना श्रेष्ठ है।" विष्णु भगवान वहाँ से लौट गए।

विष्णु भगवान के आगमन एवं प्रस्थान से अप्रभावित महर्षि दधीचि पुनः साधना में निरत हो गए। उनकी भक्ति एवं तप के प्रभाव से लोक-लोकांतर आलोकित हो रहे थे और वे स्वयं परमात्मा के अद्वैत स्वरूप में स्थित हो चुके थे। ❑

मनुष्य बुद्धिमान अवश्य है, पर जब वह बुद्धि स्वार्थसाधनों में लगती है, तब संकट खड़े करती है। वह ऐसा दृश्य उपस्थित करती है, जैसा इन दिनों प्रकृति असंतुलन, पर्यावरण प्रदूषण के रूप में समस्त विश्व में दृश्यमान हो रहा है। समझदारी इसी में है कि जिस डाल पर खड़े हैं, उसको न काटकर विवेकशीलता का परिचय दें।

—परमपूज्य गुरुदेव

जीवसेवा—शिवसेवा

हम विविध प्रकार से भगवान की पूजा करते हैं। हम मंदिरों में, देवालयों में, घरों में भगवान की पूजा के अंतर्गत उन्हें जल, गंध, अक्षत, पुष्प, धूप, दीप, नैवेद्य, फल आदि अर्पित करते हैं। हम भगवान की स्तुति गाते हैं, भगवान का ध्यान करते हैं। हम यज्ञ-अग्निहोत्र आदि करते हैं और इन सभी क्रियाकलापों को ही भगवान की पूजा करना कहते हैं। अब प्रश्न उठता है कि हम भगवान की पूजा करते क्यों हैं?

हम भगवान की पूजा भगवान को प्राप्त करने के लिए करते हैं और भगवान की प्राप्ति के लिए मन का निर्मल होना आवश्यक है। जैसा कि रामचरितमानस की प्रस्तुत चौपाई में भगवान राम ने स्वयं कहा है—

निर्मल मन जन सो मोहि पावा।
मोहि कपट छल-छिद्र न भावा॥

अर्थात भगवान राम कहते हैं कि जो मनुष्य निर्मल मन का है, वही मुझे पाता है; क्योंकि मुझे कपट और छल-छिद्र नहीं सुहाते।

इस प्रकार यह स्पष्ट है कि हम भगवान की पूजा अपने मन को निर्मल करने के लिए करते हैं और मन के निर्मल होने से ही हमें भगवान की प्राप्ति होती है। मन के निर्मल होते ही, शुद्ध होते ही व्यक्ति का चिंतन, चरित्र, व्यवहार सब बदल जाते हैं। मन के निर्मल होते ही व्यक्ति में बालसुलभ सरलता और निश्छलता आ जाती है और बालसुलभ सरलता एवं निश्छलता ही भगवत्प्राप्ति की सच्ची पात्रता व योग्यता हैं, अस्तु सभी प्रकार की पूजा का अभिप्राय एक ही है—मन को शुद्ध करना, मन को निर्मल करना और हृदय को करुणा, प्रेम, सत्य आदि दिव्य भावों से भर लेना, इस प्रकार पूजा बहुत ही महत्त्वपूर्ण है।

यहाँ यह समझना भी परम आवश्यक है कि घरों में, देवालयों में, मंदिरों में, भगवान को विविध प्रकार की पूजन सामग्री अर्पित कर देने मात्र से हमारी पूजा पूर्ण नहीं हो जाती। भगवान की पूजा की पूर्णता के लिए जिस पूजन सामग्री की सर्वाधिक आवश्यकता होती है—वह है भगवान के प्रति सच्ची श्रद्धा, सच्ची भक्ति और भगवान की सेवा। भगवान की सेवा कैसे की जाए? यह प्रश्न बड़ा ही महत्त्वपूर्ण है।

भगवान की सेवा के लिए यह समझना आवश्यक है कि भगवान का वास कहाँ है? भगवान रहते कहाँ हैं? भगवान किस रूप में रहते हैं? ईशावास्योपनिषद् के प्रथम मंत्र में स्पष्ट उद्घोष है—

ॐ ईशावास्यमिदं सर्वं यत्किञ्च जगत्यां जगत्।

अर्थात इस अखिल ब्रह्मांड में जो कुछ भी जड़-चेतनस्वरूप जगत् है, यह समस्त ईश्वर से व्याप्त है। कहने का तात्पर्य यही है कि यह संपूर्ण सृष्टि, संपूर्ण ब्रह्मांड ही ब्रह्ममय है; क्योंकि इस सृष्टि, ब्रह्मांड के रूप में स्वयं ब्रह्म ही, स्वयं ईश्वर ही स्वयं को अभिव्यक्त कर रहे हैं।

यह संपूर्ण सृष्टि भगवान की, ब्रह्म की ही भौतिक अभिव्यक्ति है, अतः इस सृष्टि में, इस संसार में किसी भी प्राणी की सेवा करना साक्षात् भगवान की ही सेवा करना है; क्योंकि इस संसार के कण-कण में ईश्वर का ही वास है। संसार के सभी प्राणियों में, वनस्पतियों में ईश्वर का ही वास

है। किसी प्राणी, वनस्पति की सेवा सब भगवान की ही सेवा है, वही भगवत्पूजा है।

पुराणों में कहा गया है कि सृष्टि के आरंभ में ब्रह्म की इच्छा हुई कि **'एकोऽहं बहु स्याम्'** अर्थात मैं एक से बहुत हो जाऊँ, मैं एक से अनेक हो जाऊँ और ब्रह्म की उसी इच्छा, संकल्प के कारण इस सृष्टि का निर्माण हुआ। जैसे कोई बीज एक होता है, किंतु समय पाकर वह एक बीज ही एक से अनेक हो जाता है। बीज को जब जमीन में बोया जाता है तब उसमें अंकुर फूटता है, फिर तना, डालियाँ, पत्ते, फूल, फल और अंततः वह बीज ही अनेक रूप हो जाता है।

उसी प्रकार ब्रह्म से ही जड़-जगत्, पेड़-पौधे, वनस्पतियाँ, पशु-पक्षी और समस्त प्राणी आदि हुए हैं। इसी कारण किसी पेड़-पौधे, पशु-पक्षी, मनुष्य या फिर किसी भी प्राणी की सेवा भी भगवान की ही सेवा अथवा पूजा होती है। निर्गुण, निराकार ब्रह्म ही सगुण, साकार रूप में इस अखिल विश्व-ब्रह्मांड के रूप में अभिव्यक्त हो रहे हैं। अस्तु सर्वव्यापी भगवान को, ब्रह्म को सिर्फ मूर्तियों, प्रतिमाओं, देवालयों में ही देखना हमारी बहुत बड़ी भूल है।

हम भगवान को मूर्तियों में, प्रतिमाओं में, पत्थर अथवा धातु से बनी मूर्तियों और छवियों में, देवालयों में देखें यह अच्छी बात है, पर यह न समझें कि भगवान सिर्फ मंदिर की मूर्तियों और प्रतिमाओं में हैं और अन्यत्र नहीं; क्योंकि सर्वव्यापी भगवान तो यत्र-तत्र-सर्वत्र समान रूप से विराज रहे हैं। हमारी हरेक गतिविधि पर, क्रियाकलाप पर, अच्छे-बुरे, शुभ-अशुभ, पाप-पुण्य आदि कर्मों पर उनकी पैनी नजर है।

वे सर्वज्ञ ब्रह्म हमारे मन में उठने वाले हर विचार और हमारे द्वारा किए जा रहे हर कर्म को देख रहे हैं, जान रहे हैं। उनसे कुछ छिपाया नहीं जा सकता। वे सर्वत्र हैं और सबमें व्याप्त हैं। इसलिए हमारे द्वारा की गई किसी की सेवा से भी वे परिचित हैं।

स्वामी विवेकानंद ने बहुत ही सुंदर कहा है कि इतनी तपस्या के बाद, मैंने इस सत्य को समझा है कि ईश्वर प्रत्येक जीव में मौजूद है। जो जीव की सेवा करता है, वह वास्तव में भगवान की सेवा करता है। जो भगवान को सिर्फ मूर्तियों में, छवियों में देखता है उसकी पूजा प्रारंभिक है, पर जो ईश्वर को हर जीव में, हर प्राणी में देखता है और जीव की शिव भाव से सेवा करता है, वह वास्तव में अपने ईश्वर की सबसे अच्छी पूजा कर रहा है।

वास्तव में इस संसार में निष्काम भाव से किसी भी प्राणी की सेवा-सहायता करना, पशु-पक्षियों की सेवा, वृक्ष-वनस्पतियों की सेवा, असहायों, निर्बलों की सेवा-सहायता करना ही ईश्वर की सर्वोत्तम पूजा है। जिस प्रकार भगवान का नित्य-निरंतर ध्यान करने, स्तुति करने से भक्त का मन निर्मल होता जाता है, वैसे ही जीव की सेवा करने से भी चित्त-शुद्धि होती है, मन निर्मल होता जाता है जो अंततः भगवत्प्राप्ति और शाश्वत सुख का कारण बनता है।

परमपूज्य गुरुदेव ने साधकों, उपासकों को उपासना के साथ-साथ साधना और आराधना करते रहने का निर्देश दिया है। आराधना अर्थात इस अखिल विश्व-ब्रह्मांड के रूप में अभिव्यक्त हो रहे भगवान की सेवा। भगवान की सेवा अर्थात हर प्राणी, हर जीव की सेवा, समाज की सेवा।

हम एक शिक्षक, अध्यापक, अभियंता, चिकित्सक, वैज्ञानिक, किसान, उद्योगपति, व्यवसायी, नेता-अभिनेता और एक सामान्य मनुष्य के रूप में यदि अपना कर्त्तव्यपालन बड़ी ईमानदारी और निष्ठा के साथ कर रहे हैं तो यह भगवान की

ही पूजा है, सेवा है, आराधना है। हम अपनी प्रतिभा, समय, श्रम, साधन, धन आदि से किसी की सेवा-सहायता करते हैं, किसी असहाय अथवा जरूरतमंद की मदद करते हैं तो यह भगवान की ही पूजा है।

जैसे हम भगवान की मूर्ति को जल, गंध, अक्षत, धूप, दीप, नैवेध आदि अर्पित कर भगवान की पूजा करते हैं, वैसे ही हम व्यक्ति, समाज की धन, श्रम, समय आदि से सेवा करके विश्वरूप भगवान की ही सेवा अथवा पूजा करते हैं। नाम, बड़ाई, प्रशंसा आदि पाने की इच्छा से किसी की सेवा-सहायता करना भगवान की पूजा नहीं, बल्कि निष्काम भाव से किसी की सेवा-सहायता करना ही भगवान की पूजा है।

निष्काम भाव से भगवान की इस प्रकार की पूजा वही कर पाता है, जिसका मन भगवान का नित्य ध्यान, भजन, स्मरण, स्तुति, उपासना करते हुए निर्मल और निश्छल हो चुका है। मन के निर्मल और निश्छल होने पर ही व्यक्ति सर्वप्रथम अपनी आत्मा में सर्वव्यापी भगवान की अनुभूति पाता है तब जाकर वह भगवान को यत्र-तत्र-सर्वत्र, हर जीव में, हर प्राणी में, वनस्पति में और सृष्टि के कण-कण में देख पाता है, निहार पाता है। वह भगवान की सर्वत्र अनुभूति पाता है। उसका हृदय करुणा, प्रेम, संवेदना से सराबोर हो उठता है।

वह स्वयं को भगवान में और भगवान को स्वयं में देखने में समर्थ हो जाता है। वह सबमें अपनी ही आत्मा का विस्तार देखता है और शिव भाव से जीव सेवा करने को व्याकुल हो उठता है। वह ब्रह्मरस का रसास्वादन करने में समर्थ हो जाता है।

तब वह ब्रह्मानुभूति पाने में समर्थ हो जाता है। सेवारूपी पूजा—शाश्वत सुख व भगवत्प्राप्ति का अचूक व अमोघ उपाय है। सेवा ही अध्यात्म का प्रतिफल है। सेवा ही पूजा का फल है, पूजा का प्रतिफल है, पूजा का प्रसाद है।

सेवा ही परम धर्म है। सेवाभावी ही सच्चा अध्यात्मप्रेमी व भगवत्प्रेमी है। सेवाभावी ही भगवान का सच्चा उपासक और आराधक है। अत: हम भी क्यों न विश्वरूप भगवान की सेवा करके सच्चे उपासक व आराधक बनें? ❑

पेड़ की एक डाल पर तोता और दूसरी पर बाज बैठा था। तोते को देख बाज अकड़कर बोला—"अरे तोते! अच्छा है कि मेरा पेट भरा हुआ है नहीं तो मैं क्षण भर में तेरे टुकड़े कर दूँ, पर तब भी तू ऐसे दुस्साहस के साथ मेरे सामने उपस्थित है।"

तोते ने कहा—"आप ठीक कहते हैं कि आप मुझसे ज्यादा शक्तिशाली हैं, पर शक्ति की शोभा दुर्बल पर जोर दिखाने में नहीं, गिरे हुओं को उठाने में होती है। भक्षण तो कोई भी कर सकता है, पर रक्षण करना बलवान का दायित्व है।"

बात बाज की समझ में आई और उसकी समझ में परिवर्तन आ गया।

यह समाज जाग्रत कैसे होगा ?

सबसे पहले तो जो बात समझी जानी है, वह हम सबके अंत:करण से संबंधित है। किसी भी समाज को बनाने वाले उसके नागरिक यदि समझदार नहीं होंगे, उनमें जीवन को देखने की नूतन दृष्टि एवं विराट हृदय नहीं होगा तो यह कैसे संभव है कि कोई आदर्श प्रेरणा उसका दिशानिर्देश करे?

यह समाज रूढ़ियों पर बसा हुआ है, चारों ओर पुरानी धारणाओं का जंजाल एवं हर किसी के मन में भय एवं आसक्ति का वास एक ही कारण से है—बदलाव के प्रति घृणा। मेरा-आपका इसमें कोई दोष नहीं कि हम एक ऐसे समाज में पैदा हुए हैं, जो कि सदियों से किसी-न-किसी प्रकार के बंधन एवं रोग-शोक की स्थिति से गुजरा है और यह मात्र भारत की ही बात नहीं विश्व के अधिकांश देशों ने भयानक त्रासदियाँ देखी हैं, चाहे वे प्राकृतिक हों या मानवजनित।

भारत ने तो विशेषकर हर प्रकार की दुर्दशा का अलंकरण किया है, यह जानकर भी कि उसके मूल में ऋषियों की प्रेरणा है, आदि-सत्य से विभूषित जिसकी परिकल्पना रही, जो इस संसार का परम मार्गदर्शक रहा।

आज वह भारत कहाँ है? किसने उसके हृदय पर यह दीवार डाल दी कि उसे कुछ गिनी-चुनी मान्यताओं पर ही चलना है? उसे संसार के समक्ष अपनी व्यापक प्रतिभा का परिचय नहीं देना है? आज समाज में जो पिछड़ापन, अनीति एवं असमानता छाई हुई है उसके पीछे एक ही कारण है, वह है अपने वास्तविक वैभव को न पहचानना, दूसरों से अपनी तुलना कर उद्देश्य-विमुख जीना।

जब ऐसा होता है तो कोई भी समाज जड़वत् बना रह एक ही नीति का पालन करता है, वह है परावलंबन की। भारतीय समाज सदियों के शोषण से तो उबरा नहीं, परंतु उसने स्वयं को ढकने के नए तरीके ढूँढ़ लिए हैं और वे हैं—आधुनिकता और भौतिकवाद को अत्यधिक प्रश्रय देकर आत्मीयता एवं सहकारिता की भावना पर पाबंदी लगाना। भारत को कुछ और नहीं, वरन अपना पुरातन वैभव चाहिए; जबकि आज वह ढूँढ़ रहा है तो मात्र इस संसार के द्वंद्व एवं दु:ख को।

भारतमाता की अमर गाथा में सैकड़ों महापुरुषों एवं उनके अभूतपूर्व योगदान का प्रसंग उभर ही आता है, फिर इन लाखों-करोड़ों मृत लाशों का क्या कहना, जिन्होंने अभी तक उस विरासत को नहीं पहचाना जो कि भारत की केंद्रीय धरोहर है। हमारा स्वाभिमान इसमें है कि समय की आँधियों ने हमें कभी कुचला नहीं, हम पुन: जीवंत हुए एवं हमने अपने चिर गौरव को उसी गति से विभूषित किया, जैसा कभी इतिहास में बार-बार होता आया है।

आज भी भारत वही है, पर सोई हुई है उसकी आध्यात्मिक प्रज्ञा, जो कि उसे महान बनाने का एकमात्र साधन है। हम पीड़ा-पतन की परिस्थितियों के मध्य रह रहे हैं, यह बात हमें स्वीकारनी होगी। हमारा जीवन किसी उच्चतम ध्येय के स्थान पर क्षणिक क्रीड़ाओं एवं विषय-व्यापार में जा उलझा है तथा हमारा चिंतन हमारे महापुरुषों का प्रतिनिधि न होकर इस समाज की दुर्व्यवस्था एवं संवेदनाविहीन उपक्रम के तले निष्प्राण एवं हतप्रभ बना हुआ है।

ऐसा क्यों हुआ ? जिस भारतमाता को कवियों ने, दार्शनिकों ने एवं सनातन सत्य के प्रहरियों ने सुशोभित किया, जो सदा से इस विश्व को नव-प्राण एवं उजली दिशा देती आई है, जिसके कंधों पर इस विश्व की जिम्मेदारी है। वह भारतमाता यदि बंधनों में बँधी रहे तो इससे बड़ी त्रासदी क्या हो सकती है। हमारा चिंतन गड़बड़ाया तो देश-समाज-संस्कृति के अधःपतन के हम भागी बने, अब फिर से जागने के इच्छुक हुए हैं तो उन विचारकों से प्रेरणा लें जो कि चिरकाल से इस भूमि को विभूषित करते आए हैं।

हम बात कर रहे हैं भारतमाता के कर्णधारों की, उन लोगों की जिन्होंने अपना बलिदान दिया, ताकि राष्ट्र के उज्ज्वल स्वर आकार ले सकें, जिनकी मनोभूमि सदा कल्याण की रही और जिनका चिंतन सदा विषय-वासना से परे रहा। जिस आध्यात्मिक अभीप्सा को हम अभिपूरित होते देखना चाहते हैं व यहाँ के प्रत्येक नागरिक के मन में मातृभूमि के प्रति गौरव के भाव को देखना चाहते हैं, वह तभी संभव है जब भारतीय जनमानस अपने आध्यात्मिक एकत्व को पहचाने तथा प्राणिमात्र के हित में अपनी योजना का क्रियान्वयन करे। ❑

राजा परीक्षित को ज्ञानियों से समाचार मिला कि कलि ने उनके राज्य में चोरी से प्रवेश किया है। परीक्षित धर्मनिष्ठ, सदाचारी पुरुष थे। वे कलि को दंड देने के लिए निकले। मार्ग में उन्होंने देखा कि एक बैल को, जो एक पैर पर खड़ा है, एक व्यक्ति दंड से प्रताड़ित कर रहा है। उन्होंने बैल से पूछा—"तुम्हारी ऐसी स्थिति का दोषी कौन है ? यह कौन है, जो तुम्हें दुःख देता है ? बैल ने उत्तर दिया—"राजन्! कर्मों के अतिरिक्त जीवन को कौन दुःख दे सकता है ? तुम्हारे मन में प्राणिमात्र के लिए कल्याण का भाव है—जाओ! तुम्हारा भी कल्याण हो।"

परीक्षित समझ गए कि कर्म की गति जानने वाला, कष्ट में भी दूसरे के कल्याण की प्रार्थना करने वाला व एक पैर पर खड़ा यह प्राणी धर्म है; क्योंकि धर्म के चार पैर सतयुग के, तीन त्रेता के, दो द्वापर के और एक कलियुग का प्रतीक हैं। धर्मरूपी बैल को कष्ट देने वाला कलि है। वे कलि को मारने को उद्धत हुए तो कलि शरणागत हो गया। शरणागत को मारना अधर्म होगा, ऐसा सोचकर वे रुक गए। कलि बोला—"मुझे कहीं भी थोड़ा रहने को स्थान दे दें।" परीक्षित बोले—"जिस घर में अधर्म का पैसा आए और जहाँ व्यक्ति जान-बूझकर कुकृत्य करे, वहीं रहो।" तब से कलि ऐसे स्थानों पर रहता चला आया है।

पिरामिड का अबूझ रहस्य

पिरामिड एक अबूझ पहेली है। 'पिरामिड' शब्द सुनते ही उत्सुकता जाग्रत हो जाती है। यह रहस्य विश्व के सात आश्चर्यों में से एक है। मान्यता है कि पिरामिड प्राचीन मिस्री राजाओं की कब्र अथवा मजार है। वास्तव में पिरामिड अपने अंदर एक-से-एक अनगिनत रहस्य छिपाए बैठे हैं। मिस्र दुनिया का प्राचीनतम देश है। वहाँ की संस्कृति अतिप्राचीन नदी घाटी सभ्यता के अंतर्गत मानी जाती है।

यद्यपि मिस्र की प्राचीन सभ्यता और संस्कृति के मात्र कुछ अवशेष ही बचे हुए हैं, परंतु इन अवशेषों से ज्ञात होता है कि मिस्र में आज से तीन हजार वर्ष पूर्व एक उन्नत सभ्यता निवास करती थी, जो वैज्ञानिक सिद्धांतों में वर्तमान समय से पीछे न थी। धातुओं तथा उपकरणों के अभाव में भले ही वहाँ प्रायोगिक विज्ञान को महत्त्व नहीं दिया गया, परंतु प्रायोगिक विज्ञान के सर्वश्रेष्ठ उदाहरण मिस्र के पिरामिड हैं, जिनके कारण मिस्र को पिरामिडों का देश भी कहा जाता है।

पिरामिडों का निर्माण आज से 4250 से 4800 वर्ष पूर्व हुआ होगा। मिस्र की राजधानी काहिरा से दस किमी दूर स्थित ये पिरामिड बड़े ही विशालकाय हैं। इनमें कुछ पर्वताकार, कुछ स्तूपाकार तथा कुछ झुके हुए हैं। पिरामिडों में सबसे बड़ा पिरामिड गीजा का महान पिरामिड है। यह राजा चयोप्स की कब्रगाह पर बना हुआ है। यह विशाल पिरामिड 450 फुट ऊँचा है तथा 13 एकड़ भूमि में बना हुआ है। सबसे छोटा पिरामिड 140 फुट ऊँचा है तथा 5 एकड़ भूमि पर बना हुआ है।

इनके निर्माण में प्रयुक्त किए गए अधिकांश पत्थर बारह फुट से भी अधिक ऊँचे हैं। पत्थरों की सतह भी लंबाई और चौड़ाई में 15-15 फुट से अधिक है अर्थात सम आकृति वाले पत्थरों का क्षेत्रफल 200 फुट से भी अधिक है। यह पत्थर किस प्रकार इतनी ऊँचाई तक चढ़ाए गए होंगे, यह समझ पाना बहुत ही कठिन है। आश्चर्य तो यह है कि इनकी बनावट के बीच तथा जमाए गए पत्थरों के बीच एक बाल के बराबर भी जगह नहीं है। इन पिरामिडों की कलात्मकता का अनुमान लगाना ही कठिन है।

मिस्र एक रेगिस्तानी क्षेत्र है। वहाँ पानी मिलना बहुत ही कठिन है, उस पर भी इतने बड़े-बड़े निर्माणों के लिए पानी इकट्ठा करना टेढ़ी खीर के समान है। यदि जल का उपयोग किया भी जाता है तो 1300 एकड़ का तालाब बनाया जाता, जिसमें पानी इकट्ठा हो पाता, परंतु ऐसे कोई अवशेष नहीं जिनसे ज्ञात हो कि पिरामिडों के निर्माण में जल का उपयोग भी किया गया होगा। इन पिरामिडों की रचना बहुत ही जटिल है।

यह कह पाना कठिन है कि इनके निर्माण में कितने अनुभवी और प्रशिक्षित शिल्पियों का योगदान रहा होगा। यदि ऐसा कहा जाए कि पिरामिड रहस्य तथा आश्चर्य का पिटारा हैं तो अतिशयोक्ति नहीं होगी। पिरामिडों के बाहर कभी-कभी चीखने, चिल्लाने, कराहने, पत्थरों के काटने आदि की आवाजें सुनाई पड़ती हैं। वैज्ञानिक मत है कि निर्माणाधीन अवस्था में पिरामिडों में यह आवाजें परत-दर-परत ग्रामोफोन टेप की तरह टेप होती गईं, जो वायु घर्षण के उपरांत सुनाई देती हैं।

एक सुप्रसिद्ध यहूदी विद्वान ने इन पिरामिडों के रहस्यों पर प्रकाश डालते हुए सिद्ध किया कि इन स्मारकों में उस समय विभिन्न कलाओं, गणित और ज्यामितीय अन्वेषणों का प्रतिचित्रण किया गया है। पिरामिडों में नक्षत्र विज्ञान संबंधी अनेक घटनाओं का विवरण भी चित्रित है। संभवत: इन स्मारकों के निर्माणकर्त्ताओं को उत्तरी तथा दक्षिणी ध्रुवों का ज्ञान था।

पिरामिडों पर भविष्यवाणियाँ संकेतात्मक भाषा में प्रतिचित्रित हैं। यह भविष्यवाणियाँ ध्रुवतारे को आधार मानकर की गई हैं। विद्वानों का मत है कि इन पिरामिडों का निर्माण किसी धार्मिक कार्यवश नहीं किया गया, अपितु लोगों को भविष्य के बारे में संकेत देने के लिए किया गया।

विश्वप्रख्यात पिरामिड रहस्यकार सर डेविडसन ने सन् 1924 में माप इकाई द्वारा पिरामिडों पर अंकित भविष्यवाणियों को पढ़ने में सफलता प्राप्त की। कहा जाता है कि पिरामिडों पर अंकित भविष्यवाणियों का संकलन किया जाए तो एक विशालकाय ग्रंथ तैयार हो जाएगा।

सर डेविडसन ने भविष्यवाणियों को ही ओरोग्राफी नाम दिया। यदि पिरामिडों पर अंकित भविष्यवाणियों के संकेतों के बारे में कुछ पता चल पाए तो हम भविष्य की घटनाओं तथा नक्षत्र ज्ञान के बारे में कुछ जानकारी पाने में सक्षम हो जाएँगे। सभी लोग ऊँटों पर सवारी नहीं करेंगे, हवा से भी तेज वाहन आकाश पर चलेंगे। मौसम पर नियंत्रण रखेंगे। स्वर्ग जैसे ऐशोआराम प्राप्त कर सकेंगे आदि भविष्यवाणियाँ पिरामिडों पर ही अंकित हैं।

इन बातों से सिद्ध होता है कि पिरामिडों का निर्माण उस समय हुआ होगा, जिस समय मिस्र की सभ्यता, वास्तुकला तथा शिल्पकला चरम सीमा पर थी।

पिरामिड एक अबूझ पहेली हैं, जिन्हें अब तक पूरी तरह बूझने में हम सक्षम नहीं हो सके हैं। हमारा विज्ञान जब तक पृथ्वी पर पड़े रहस्यों की जानकारी नहीं दे सकेगा। तब तक उसका विशेष ज्ञान अधूरा रहेगा। रहस्यों के खजाने से भरे यह पिरामिड आज के विज्ञान को चुनौती देते हुए गर्व से सिर उठाए खड़े हैं। ❑

आज मैं तुम्हें एक बड़ा संदेश देने खड़ा हुआ हूँ और वह यह कि तुम कभी अनीति एवं अविवेकयुक्त मान्यता या परंपरा को अपनाने की बौद्धिक पराधीनता को स्वीकार न करना। संभव है कि इस संघर्ष में तुम अकेले पड़ जाओ, तुम्हें साथ देने वाले लोग अपने हाथ सिकोड़ लें, पर तो भी साहस न हारना। तुम्हारे दो हाथ सौ हाथ के बराबर हैं। इन्हें तानकर के खड़े हो जाओगे तो बहुमत द्वारा समर्थित होते हुए भी कोई मूढ़ता तुम्हें झुकने के लिए विवश न कर सकेगी। जब तक तुम्हारी देह में प्राण शेष रहें, सत्य के समर्पण और विवेक के अनुमोदन का तुम्हारा स्वाभिमान न गले, यही अंत में तुम्हारे गौरव का आधार बनेगा। ***—स्वामी विवेकानंद***

अंतर्पुकार

एक अध्यापक हर रोज अपने शिष्यों को उपदेश दिया करते थे। वे बहुत विद्वान थे। हर दिन अपने शिष्यों को कुछ-न-कुछ अच्छी और सकारात्मक बातें बताते थे। उनके शिष्य उनसे विभोर रहते थे। सभी उनकी विद्वत्ता, उनकी बुद्धिमत्ता और उनके सम्यक ज्ञान के प्रशंसक थे; इसलिए वे उन पर बहुत भरोसा करते थे। उनके शिष्य उन्हें हमेशा बहुत ध्यान से सुनते थे।

एक दिन उन्होंने अपने शिष्यों को बताया कि जब वे युवा थे, तब बहुत क्रांतिकारी थे। हर समय दुनिया को बदल देने का सपना देखा करते थे। उन्हें लगता था कि दुनिया में हर कोई बराबर होना चाहिए।

उनके मुताबिक वे ईश्वर से हमेशा यही प्रार्थना किया करते थे कि हे ईश्वर! दुनिया को उसके सपनों के मुताबिक बदल दे। दुनिया में सबको बराबर कर दे। सबको समस्याओं से रहित कर दे और सबमें सबके लिए प्यार भर दे। वे यही सपना देखते रहे। ईश्वर से अपने सपने को पूरा करने की प्रार्थना करते रहे।

फिर एक दिन उन्हें लगा कि अब वे युवा नहीं रहे। उन्होंने अपने आप को युवाओं की कतार से अलग पाया। साथ ही उन्होंने अपनी प्रार्थना को भी बदला हुआ पाया।

उन्होंने अपने शिष्यों को आगे बताया कि जब वे युवा नहीं रहे, अधेड़ हो गए तो उनकी प्रार्थना भी वह नहीं रही, जो युवावस्था के समय थी। वह भी बदल गई। अब वे ईश्वर से हर समय यह प्रार्थना करते कि ईश्वर उनके परिवार को बदल दे।

जहाँ पहले वे पूरी दुनिया को बदलने का सपना देखा करते थे। ईश्वर से उसकी कामना और उसके लिए प्रार्थना करते। वहीं अब उनकी प्रार्थना मूल रूप से परिवार तक सिमट गई। परिवार से बाहर उन्होंने जब अपनी प्रार्थना को विस्तारित करना चाहा तो सिर्फ मित्रों को ही इसमें शामिल कर पाए।

वे ईश्वर से कहने लगे कि उनके परिवार के साथ-साथ अब वह उनके मित्रों को भी बदल दे, लेकिन अब फिर उनकी यह अंतिम प्रार्थना नहीं थी, अब अधेड़ावस्था भी नहीं रही, न चाहते हुए भी उन्हें स्वीकार करना पड़ा कि वे वृद्ध हो गए हैं तो उन्होंने एक बार फिर अपनी प्रार्थना बदल दी। हालाँकि अब भी यह तय नहीं था कि यह इनकी अंतिम प्रार्थना है।

हाँ! इतना जरूर तय था कि उन्होंने अपनी प्रार्थना बदल दी थी। इन दिनों जब वे अपने शिष्यों को हर दिन नए-नए तरीकों से प्रभावित करते थे, रोमांचित करते थे तो उनकी प्रार्थना फिर से बदल गई थी।

इस कहानी का सार यह है कि सच्ची प्रार्थनाएँ कभी नहीं बदला करतीं, क्योंकि सच्ची प्रार्थनाएँ जीवन जीने का तरीका होती हैं। सच्चे जीवन की चाह भी एक तरह की प्रार्थना ही है। इसलिए प्रार्थनाएँ नहीं बदलनी चाहिए, जीवन को ऐसा बनाना चाहिए कि वह स्वयं एक सच्ची प्रार्थना बन जाए। हम न सिर्फ समय-समय पर अपनी प्रार्थनाएँ, बल्कि अपने ईश्वर भी बदलते रहते हैं। हम अक्सर प्रार्थनाएँ तब करते हैं, जब हम कुछ चाह रहे होते हैं।

हमारी प्रार्थनाएँ हमारे इष्ट से हमारी कामनाएँ होती हैं। हम प्रार्थनाओं से आनंद नहीं लेते, बल्कि आनंद के लिए प्रार्थनाएँ करते हैं। इसीलिए हमें अपनी प्रार्थनाएँ अनसुनी होती मालूम पड़ती हैं। सच्ची प्रार्थना वह है, जो तब की जाए, जब हमें कुछ चाहत न हो, कुछ कामना न हो।

ऐसी बिना कामना के की गई सच्ची प्रार्थना ही हमारे जीवन को आनंद से भरपूर बना पाती है; क्योंकि सच्ची प्रार्थना तड़पते हृदय की पुकार है, व्यथित दिल का संवेदन है। अंतस् से उठती पुकार ही सच्ची प्रार्थना है और प्रार्थना के यह स्वर अपने प्रभु के पास अवश्य पहुँचते हैं। ❑

माण्डव्य ऋषि प्रचंड तपस्वी थे। अपने आश्रम में बैठे तपस्या कर रहे थे। सामने से कुछ चोर निकले। वे राजमहल से कुछ चुराकर भाग रहे थे। उनके पीछे राजा के सैनिक भी पड़े थे। घबराहट में उन्होंने चुराई हुई वस्तएँ माण्डव्य ऋषि के आश्रम में फेंक दीं। राजा के सैनिकों ने माण्डव्य ऋषि को चोरी के आरोप में पकड़ लिया। उन्हें राजा के सामने प्रस्तुत किया गया।

राजा ने माण्डव्य ऋषि को सूली पर चढ़ाने का आदेश दिया। माण्डव्य ऋषि अत्यंत पुण्यात्मा थे, निरपराध थे। कई बार प्रयत्न करने के बाद भी जब सैनिक उन्हें सूली नहीं चढ़ा पाए तो राजा को लगा कि शायद उससे कोई भूल हो गई। उसने माण्डव्य ऋषि से क्षमा माँगते हुए उन्हें रिहा कर दिया।

माण्डव्य ऋषि ने राजा की भूल के लिए उसे तो क्षमा कर दिया, पर यमलोक जाकर उन्होंने यमराज से पूछा—"यमराज! मेरे ऐसे क्या कर्म थे, जिसके कारण मुझे फाँसी का दंड लेने सूली पर चढ़ना पड़ा।" यमराज ने अपने सारे खाते देख डाले, पर उन्हें कोई विशेष कारण नहीं मिला।

बहुत ढूँढ़ने पर उन्होंने माण्डव्य ऋषि से कहा—"आपने 3 वर्ष की उम्र में एक पतंगे को कष्ट दिया था, यह उसका दंड था।" माण्डव्य ऋषि बोले—"यमराज! 8 वर्ष से कम उम्र में कृतकर्म अज्ञानवश होते हैं और अज्ञानवश कृतकर्म का दंड स्वप्न में भुगतना पड़ता है। उस दृष्टि से यह अन्याय है।"

माण्डव्य ऋषि की आपत्ति सत्य थी। इसका कोई उत्तर यमराज के पास नहीं था। उन्होंने माण्डव्य ऋषि से अपनी भूल की क्षमा माँगी, परंतु ऋषि को अकारण कष्ट देने के कारण शाप तो स्वीकार करना ही था। वे एक साथ दो रूपों में—युधिष्ठिर एवं विदुर के रूप में पैदा हुए। अपने कर्मों का परिणाम चाहे वो धर्मराज या यमराज ही क्यों न हों, सभी को भुगतना पड़ता है।

व्यवहार की उत्प्रेरक हैं भावनाएँ

भावना के अनुरूप ही दृष्टिकोण उपजता है और जैसा दृष्टिकोण बन जाता है, कालांतर में वैसी ही भावनाएँ जन्मने लगती हैं। भावनाएँ और दृष्टिकोण एकदूसरे के कारक भी हैं और परिणाम भी। दोनों एकदूसरे पर आश्रित हैं। एक ही वस्तु के प्रति लोगों के भिन्न-भिन्न दृष्टिकोण हो सकते हैं। भावनात्मक अस्थिरता से ही मनोविकृति पनपती है।

आजकल भावनाओं का उतार-चढ़ाव सुर्खियों में है। खासतौर पर घृणा, द्वेष, कुंठा जैसी भावनाएँ और उनसे उपजती हिंसा चारों ओर उथल-पुथल मचाती नजर आ रही है। बच्चे से लेकर प्रौढ़ व्यक्ति तक अपने लिए हिंसा को संतुष्टि पाने का एक पक्का, सीधा और सरल तरीका मानकर अपनाते जा रहे हैं।

पहले अनैतिक घटनाएँ कम घटती थीं, पर अब इनकी भरमार है और तो और धर्म का नाम लांछित करते हुए सारी शरम-हया छोड़ अनेक चतुर-चालाक लोग धर्म के संस्थागत रूप की आड़ में भावनाओं से खेलते हुए दुःखी, कठिनाई में पड़े व सुख की चाह रखने वाले लोगों का गिरोह बनाकर शोषण करते रहते हैं।

इन सब घटनाओं से जुड़े आँकड़ों पर विचार करें तो स्पष्ट हो जाता है कि इन सबमें अपने सुख के लिए 'दूसरों' को शारीरिक-मानसिक रूप से पीड़ा और हानि पहुँचाई जाती है। कोशिश यही रहती है कि किसी तरह अपने को प्रत्यक्ष या अप्रत्यक्ष रूप से संतुष्ट किया जाए। इच्छाओं की इस छटपटाहट के लिए हमारे आस-पास का परिवेश उत्तेजना के अवसर भी खूब दे रहा है।

मीडिया और विज्ञान नित नए आकर्षणों के साथ असंतुष्टि और अतृप्ति के मनोभावों को सतत प्रसारित एवं प्रचारित करते रहते हैं। प्रभावशाली ढंग से बतलाते रहते हैं कि अमुक चीजों के अभाव में हम कुछ कमतर मनुष्य हैं, अधूरे हैं। ऐसे में हमारी परिस्थितियाँ खंडित या अपर्याप्त हैं, यह भाव हममें से अधिकांश के जीवन का स्थायी भाव बनता जा रहा है। पात्र हों या अपात्र—इच्छा पूरी न हो तो सबमें कुंठा पैदा होती है। तब जिम्मेदार स्रोत के प्रति आक्रोश की तात्कालिक प्रतिक्रिया होती है।

हिंसा, लोभ, आसक्ति और भावनाओं के जोड़-तोड़ से सामाजिक जीवन में इस तरह की प्रवृत्ति बढ़ रही है। तीव्र भावनाएँ हमारे निर्णय की क्षमता या विवेक को प्रभावित करती हैं। मुख्य रूप से भावनाओं या संवेगों को सकारात्मक और नकारात्मक, दो श्रेणियों में रखा जाता है। ये हमारे दैनिक जीवन में कई तरह के रंग भरते रहते हैं। संवेग कभी तटस्थ नहीं होते हैं।

दिन-प्रतिदिन का आकलन करें तो पता चलता है कोई व्यक्ति अपेक्षाकृत अधिक सकारात्मक या नकारात्मक दशाओं का अनुभव करता है। मानवीय संवेगों की अनुभूति घटनाओं की समझ या व्याख्या पर निर्भर करती है। परिस्थिति के आकलन के आधार पर ही भिन्न-भिन्न संवेगों का अनुभव किया जाता है। सामाजिक-सांस्कृतिक दृष्टि से विचार करें तो आचारों से जुड़े नैतिक संवेग अधिक महत्त्वपूर्ण होते हैं।

नैतिक संवेगों को हम बचपन से सीखते हैं, और वे सहजात जैसे हो जाते हैं। अपनी संस्कृति के

अनुरूप हम परिस्थितियों के नैतिक पक्ष का मूल्यांकन करते हैं। जब नैतिक आत्मचेतना विकसित होती है, तो व्यक्ति स्वयं अपने व्यवहार को दंडित या पुरस्कृत करता है।

लज्जा, ग्लानि व पश्चात्ताप नैतिक भावनाएँ हैं। भावनात्मक उबाल नैतिक कार्यों की ओर उन्मुख करता है। दान देना, गलतियों के लिए क्षमा माँगना या पीड़ितों का पक्षधर होना भी ऐसे ही नैतिक आचरण हैं। आज एक ओर नकारात्मक संवेगों का बाहुल्य है, तो दूसरी ओर नैतिक संवेग दुर्बल हो रहे हैं। इसके कई कारण हैं।

आज प्रतियोगिता व भौतिक सुखों की दौड़ में संवेगों को तर्क बुद्धि के विरुद्ध रखकर पेश किया जाता है। हम भूल जाते हैं कि संवेग अपनी परिस्थिति को समझने में मदद भी करते हैं और नैतिक फैसले भी ज्यादातर संवेग पर ही आधारित होते हैं।

जहाँ हिंसा के मनोभाव हमारे भीतर पशुता के भाव को व्यक्त करते हैं, तो वहीं नैतिकता हमें गरिमा देती है और सभ्य व्यक्ति बनाती है। पशुता के विपरीत वह मानवता का उच्चतम स्वरूप उपस्थित करती है।

नैतिक मनोभाव और व्यवहार इस रूपांतरण को रेखांकित करते हैं। नैतिक मनोभाव दूसरों के हित से जुड़े होते हैं। अत: भावनाओं को समझकर इन पर ध्यान देने की जरूरत है। इतने महत्त्व के बाद भी इस विषय पर विशेष ध्यान नहीं दिया जाता है। मनोवैज्ञानिक शोधों में भी नकारात्मक भाव जैसे क्रोध पर तो ध्यान गया है, पर शेष सभी उपेक्षित पड़े हैं।

आत्मचेतन संवेग नैतिक आचरण के लिए जरूरी हैं। इनमें यह सोच कि हमारा व्यवहार दूसरों को प्रभावित करता है; अत: हमें ऐसा व्यवहार करना चाहिए कि दूसरों को बुरा न लगे—यह महत्त्वपूर्ण होता है।

धर्म की व्यापक अवधारणा में धैर्य, क्षमा, अहिंसा, मैत्री, करुणा, दया, उदारता, सत्य, अक्रोध जैसे नैतिक भावों और संवेगों पर बल दिया जाता है। इनकी प्रतिष्ठा में ही सह-अस्तित्व और सामाजिक जीवन की समरसता सुरक्षित हो सकती है।

व्यक्तित्व की भिन्नता ही किसी व्यक्ति के उत्थान-पतन का कारण बनती है। अच्छा दृष्टिकोण व्यक्तित्व के गुणों का विकास करता है। वहीं कुदृष्टिकोण व्यक्तित्व के दोषों और विनाश का कारण बनता है।

अच्छा दृष्टिकोण अपनी आशामयी प्रवृत्ति के कारण जीवनशक्ति का संचारक और संवाहक बनकर उसे सफल, सुखद, सरस और समृद्ध वनाता है; जबकि कुदृष्टिकोण अपनी निराशावादी वृत्ति के कारण जीवन को निगल लेने वाले अंधकार को नित गहनतर करता जाता है। वह अपने चारों ओर उदासी, भय और कुंठा का वातावरण निर्मित करता रहता है। अवसादों और तनावों के कुहासे में अपने को घेरे रहता है।

सुदृष्टिकोण सक्रिय ऊर्जा सृजित करता है, जिससे कोई भी व्यक्ति न तो अपने को ठगा अनुभव करता है और न ही हताश और अशक्त। प्राणी अपनी इस चिरस्फूर्तता को सुकृत्यों में परिवर्तित करने और अपने लक्ष्यों को प्राप्त करने के लिए सदैव क्रियाशील रहता है।

ऐसे ही ऊर्जावान व्यक्ति नया संसार रचते हैं। उनके प्रयासों से नए-नए आविष्कारों, अनुसंधानों और अन्वेषणों के क्रम सामने आते हैं। ऐसे लोग ही सुरक्षा के कवच गढ़ते हुए सृजन के बीज बोते हैं। उनके ही मार्गदर्शन में उन्नत शिक्षा के फूल खिलते हैं और रचनात्मक शांति की शीतल वायु प्रवाहमान होती है। ऐसे सुदृष्टिकोण संपन्न व्यक्ति ही समाज के आदर्श होते हैं। लोग उनके अनुसरण और अनुकरण से ही अपने जीवन को सार्थक एवं धन्य बनाते हैं। ❑

कश्मीर में रामभक्ति की भावधारा

कश्मीरी काव्य में वैष्णव भक्ति का निरूपण उन्नीसवीं शताब्दी के आस-पास देखने को मिलता है। कश्मीर में रामभक्ति का विकास उससे पूर्व एक सशक्त संप्रदाय के रूप में नहीं हो पाया। इसका प्रमुख कारण है कि कश्मीर-मंडल शताब्दियों तक शैवमत का प्रधान केंद्र रहा। यहाँ के भक्त कवि एवं धर्मपरायण प्रबुद्ध जन इसी मत के सैद्धांतिक चिंतन-मनन तक सीमित रहे।

भौगोलिक सीमाओं के कारण भी यह प्रदेश मध्य भारत के वैष्णव भक्ति आंदोलन से सीधे जुड़ न सका। कालांतर में वैष्णव भक्ति की सशक्त स्रोतस्विनी जब समूचे देश में प्रवाहित होने लगी तब कश्मीर-मंडल भी इससे अछूता न रह सका। कश्मीर में वैष्णव भक्ति के प्रचार-प्रसार का श्रेय उन साधुओं, संतों एवं वैष्णव भक्तजनों को जाता है, जो उन्नीसवीं शताब्दी के मध्य भारत से इस प्रदेश में आए और राम, कृष्ण भक्ति का सूत्रपात किया।

शैव संप्रदाय के समानांतर कश्मीर में सगुण भक्ति की क्षीण धारा तो प्रवाहित होती रही, किंतु एक वेगवती धारा का रूप ग्रहण करने में वह असमर्थ रही। इधर जब शैव संप्रदाय के अनुयायी विदेशी सांस्कृतिक आक्रमण से आक्रांत हो उठे तो निराश, निस्सहाय होकर वे विष्णु के अवतार के रूप में त्राण, सहारा ढूँढ़ने लगे।

अंतर केवल इतना रहा कि जिस सगुण भक्ति, विशेषकर रामभक्ति आंदोलन ने, मध्य भारत के कवियों को सोलहवीं शती में प्रभावित किया, उसी आंदोलन ने देर से ही सही, कश्मीर में उन्नीसवीं शताब्दी में प्रवेश किया और रामकथा विषयक सुंदर काव्य रचनाओं की सृष्टि हुई।

इनमें प्रकाशराम कृत 'रामावतारचरित' कश्मीरी काव्यपरंपरा में अपनी सुंदर वर्णनशैली, भक्ति-विह्वलता, कथा-संयोजन तथा काव्य-सौष्ठव की दृष्टि से विशेष महत्त्व रखता है। 'रामावतारचरित' की मूलकथा का आधार यद्यपि वाल्मीकिकृत रामायण है, तथापि कथासूत्र को कवि ने अपनी प्रतिभा और दृष्टि के अनुरूप ढालने का सुंदर प्रयास किया है। कई स्थानों पर काव्यकार ने कथा-संयोजन में किन्हीं नूतन (विलक्षण अथवा मौलिक) मान्यताओं की उद्घोषणा की है।

'रामावतारचरित' के युद्धकांड प्रकरण में उपलब्ध एक अत्यंत अद्भुत और विरल प्रसंग 'मक्केश्वर-लिंग' से संबंधित है, जो प्रायः अन्य रामायणों में नहीं मिलता है। यह प्रसंग जितना रोचक है, उतना ही गुदगुदाने वाला भी। शिव रावण के याचना करने पर उसे युद्ध में विजयी होने के लिए एक लिंग (मक्केश्वर) दे देते हैं और कहते हैं कि जा, यह तेरी रक्षा करेगा, मगर ले जाते समय इसे मार्ग में कहीं पर भी धरती पर न रखना।

लिंग को अपने हाथों में आदरपूर्वक थामकर रावण आकाशमार्ग द्वारा लंका की ओर प्रयाण करता है। रास्ते में उसे लघुशंका की आवश्यकता होती है। वह आकाश से नीचे उतरता है तथा इस असमंजस में पड़ता है कि लिंग को वह कहाँ रखे। तभी ब्राह्मण वेश में नारद मुनि वहाँ पर प्रगट होते हैं, जो रावण की दुविधा भाँप जाते हैं। रावण लिंग उनके हाथों में यह कहकर सँभला जाता है कि वह

अभी निवृत्त होकर आ रहा है। रावण लघुशंका से निवृत्त हो ही नहीं पाता। धारा रुकने का नाम नहीं लेती। संभवत: यह प्रभु की लीला, माया थी।

काफी देर तक प्रतीक्षा करने के उपरांत नारद जी लिंग को धरती पर रखकर चले जाते हैं। तब रावण के बहुत प्रयत्न करने पर भी लिंग उस स्थान से हिलता नहीं है और इस प्रकार भगवान शिव द्वारा प्रदत्त लिंग की शक्ति का उपयोग करने से रावण वंचित हो जाता है।

'रामावतार चरित' में उल्लिखित एक दिलचस्प कथा-प्रसंग लंका-निर्माण के संबंध में है। पार्वती जी ने एक दिन अपने निवास हेतु भवन-निर्माण की इच्छा शिव के सम्मुख व्यक्त की। विश्वकर्मा द्वारा शिव जी की आज्ञा पर एक सुंदर भवन बनाया गया। भवन के लिए स्थान के चयन के बारे में रामावतारचरित में एक रोचक प्रसंग मिलता है।

गरुड़ एक दिन क्षुधा-पीड़ित होकर कश्यप ऋषि के पास गए और कुछ खाने को माँगा। कश्यप ऋषि ने उनसे कहा—"जाओ उस मदमस्त हाथी और ग्राह को खा लो, जो तीन सौ कोस ऊँचे और उससे भी दुगने लंबे हैं। वे दोनों इस समय युद्ध कर रहे हैं।" गरुड़ वायु वेग की तरह उड़े और उन पर टूट पड़े तथा अपने दोनों पंजों में पकड़कर उन्हें आकाश मार्ग की ओर ले गए। भूख मिटाने के लिए वे एक विशालकाय वृक्ष पर बैठ गए। भार से इस वृक्ष की एक डाल टूटकर जब गिरने को हुई तो गरुड़ ने उसे अपनी चोंच में उठाकर बीच समुद्र में फेंक दिया। यह सोचकर कि यदि डाल (शाख) पृथ्वी पर गिर जाएगी तो पृथ्वी धँसकर पाताल में चली जाएगी।

इस प्रकार जिस जगह पर यह शाख (कश्मीरी भाषा में लंग) समुद्र में जा गिरी, वह जगह कालांतर में 'लंका' कहलाई। विश्वकर्मा ने अपने अद्भुत कौशल से पूरे त्रिभुवन में इसे अँगूठी में नग के समान बना दिया। गृहप्रवेश के समय कई अतिथि एकत्र हुए। अपने पितामह पुलस्त्य के साथ रावण भी आया और लंका के वैभव ने उसे मोहित किया। गृहप्रवेश की पूजा के उपरांत जब शिव ने दक्षिणास्वरूप सबसे कुछ माँगने का अनुरोध किया तो रावण ने अवसर जानकर शिव जी से लंका ही माँग ली।

रावण ने कहा—"मैं लंका को माँगता हूँ, यह मुझे धर्म के नाम पर मिल जानी चाहिए; क्योंकि आप ईश्वर रूप में सबसे बड़े दाता हैं।" तब शिव ने चारों ओर पानी छिड़का और लंका को रावण के हवाले कर दिया और स्वयं के निवास हेतु कैलास पर्वत का चयन किया।

जटायु-प्रसंग भी रामावतारचरित में अपनी मौलिकता के साथ वर्णित हुआ है। जटायु के पंख-प्रहार जब रावण के लिए असहनीय हो उठे तो वह इनसे छुटकारा पाने की युक्ति पर विचार करता है। वह जटायु वध की युक्ति बताने के लिए सीता जी को विवश कर देता है।

विवश होकर सीता जी को उसे जटायु वध का उपाय बताना पड़ा। वे बोलीं कि रक्त से सने हुए बड़े-बड़े पत्थरों को इसके ऊपर फेंक दो। उन्हें यह निगल जाएगा और उनके भारस्वरूप तुम्हारे पीछे नहीं उड़ेगा। जब तक यह रामचंद्र जी के दर्शन कर उन्हें मेरी खैर-खबर नहीं सुनाएगा, तब तक यह मरेगा नहीं।

रामावतारचरित में कुछ ऐसे कथा-प्रसंग भी हैं, जो तनिक भिन्न रूप में संयोजित किए गए हैं। उदाहरण के तौर पर रावण दरबार में अंगद के स्थान पर हनुमान के पैर को असुर पूरा जोर लगाने पर भी उठा व डिगा नहीं पाते।

एक अन्य स्थान पर रावण युद्धनीति का प्रयोग कर सुग्रीव को अलग से एक पत्र लिखता है और

अपने पक्ष में करना चाहता है। तर्क वह यह देता है कि क्या मालूम किसी दिन उसकी गति भी उसके भाई बालि जैसी न हो जाए।

वह भाई के वध का प्रतिशोध लेने के लिए सुग्रीव को उकसाता है और लंका आने के लिए निमंत्रण देता है, जिसे सुग्रीव ठुकरा देते हैं। इसी प्रकार महिरावण, अहिरावण का राम और लक्ष्मण को उठाकर पाताललोक ले जाना और बाद में हनुमान द्वारा उसे युद्ध में परास्त कर दोनों की रक्षा करने का प्रसंग भी रामावतारचरित का एक रोचक प्रकरण है।

रामावतारचरित के लव-कुश कांड में भी कुछ ऐसे कथा-प्रसंग हैं, जिनमें कवि प्रकाशराम की कतिपय मौलिक भावनाओं का परिचय मिल जाता है। लव-कुश द्वारा युद्ध में मारे गए राम, लक्ष्मण, भरत और शत्रुघ्न के मुकुटों को देखकर सीता जी का विलाप करना, सीता जी के रुदन से द्रवित होकर वसिष्ठ जी द्वारा अमृत वर्षा कराना और सेनासहित रामादि का पुनर्जीवित हो उठना, वसिष्ठ के आग्रह पर सीता जी का अयोध्या जाना, किंतु वहाँ राम द्वारा पुनः अग्नि-परीक्षा की माँग करने पर उनका भूमि-प्रवेश करना आदि प्रसंग अद्वितीय हैं।

कश्मीरी विद्वान डॉ0 शशिशेखर तोषखानी के अनुसार रामावतारचरित की सबसे बड़ी विशेषता है—स्थानीय परिवेश की प्रधानता। अपने युग के सामाजिक, सांस्कृतिक और भौगोलिक परिवेश का कृति पर इतना गहन प्रभाव है कि उसका स्थानीय तत्त्वों के समावेश से पूरा कश्मीरीकरण हो गया है।

ये तत्त्व इतनी प्रचुर मात्रा में कृति में लक्षित होते हैं कि अनेक पात्रों के नाम भी कश्मीरी उच्चारण के अनुरूप ही बना दिए गए हैं। जैसे जटायु यहाँ पर जटायन है, कैकेयी कीकी, इंद्रजीत इंद्रजेठ है और संपाति संपाठ हैं। रहन-सहन, रीति-रिवाज, वेशभूषा आदि में स्थानीय परिवेश इतना अधिक बिंबित है कि 19वीं शती के कश्मीर का जनजीवन साकार हो उठता है।

राम के वनगमन पर विलाप करते हुए दशरथ कश्मीर के परिचित सौंदर्य स्थलों और तीर्थों में राम को ढूँढ़ते हुए व्याकुल दिखाए गए हैं। लंका के अशोक वन में कवि ने गिन-गिनकर उन पुष्पों को दिखलाया है, जो कश्मीर की घाटी में अपनी रंग-छवि बिखेरते हैं।

राम का विवाह भी कश्मीरी हिंदुओं में प्रचलित पूजा, पुष्प-पूजा आदि रीतियों और रस्मों के अनुसार वर्णित है। 'लव-कुश चरित' में सीता के पृथ्वी-प्रवेश प्रसंग के अंतर्गत कश्मीरी रामायणकार प्रकाशराम

सत्यं ब्रूयात्प्रियं ब्रूयान्न ब्रूयात्सत्यमप्रियम्।
प्रियं च नानृतं ब्रूयादेष धर्मः सनातनः॥

—मनुस्मृति, 100/138

अर्थात सत्य बोलो, प्रिय बोलो; लेकिन अप्रिय सत्य मत बोलो। प्रिय हो, पर असत्य न हो, ऐसा बोलो। यही सनातन धर्म है।

ने भक्ति से विह्वल होकर शंकरपुर गाँव में सीता जी का पृथ्वी-प्रवेश दिखाया है। किवदंती है कि यहाँ के रामकुंड चश्मे के पास आज भी जब यह कहा जाता है—सीता देख, रामजी आए हैं, तेरे रामजी आए हैं, तो चश्मे के पानी में से बुलबुले उठते हैं।

हो सकता है यह भावातिरेकजनित एक लोक-विश्वास हो, लेकिन कश्मीरी कवि प्रकाशराम ने इस लोक-विश्वास को रामकथा के साथ आत्मीयतापूर्वक जोड़कर अपनी जननी जन्मभूमि को देवभूमि का गौरव प्रदान किया है। इस प्रकार कश्मीर में रामभक्ति की धारा फूट पड़ती है और कश्मीर को राममय बना देती है। ❑

मन का बंधन है आसक्ति

मन का किसी चीज से चिपक जाना, कहीं पर ठहर जाना ही आसक्ति है। मन जब आसक्त होता है तो उसे छोड़ता नहीं एवं उसी के इर्द-गिर्द घूमता रहता है। आसक्तिवश हम कर्म करते हैं। आसक्ति हमें कर्म करने के लिए प्रेरित करती है। आसक्ति का मतलब यह नहीं कि हम किसी से प्रेम करते हैं, तो आसक्ति है। आसक्ति का मतलब है कि हम जिन परिस्थितियों में हैं, उन्हीं से चिपके हुए हैं। हम जड़ हो गए हैं, वहीं पर ठहर गए हैं। हमारा ठहरना, हमारा ठहराव आसक्ति है।

आसक्ति के दो रूप होते हैं। उसका विधेयात्मक रूप है, उसका सकारात्मक पक्ष है—राग। उसका नकारात्मक पक्ष है—द्वेष। सकारात्मक और नकारात्मक इसलिए कहा गया; क्योंकि राग होता है तो हम क्षणमात्र के लिए ही सही थोड़ा-सा सुख और सुकून अनुभव कर लेते हैं। द्वेष होता है तो हम जलते-कुढ़ते रहते हैं, परेशान रहते हैं, लेकिन राग हो या द्वेष हो, ठहरते तो हम हैं ही—वहीं टिक जाते हैं, रुक जाते हैं।

जीवन यात्रा है और हम यात्री हैं। एक यात्रा हमारी बाह्यजगत् में चल रही है और एक यात्रा हमारी अंतर्जगत् में चल रही है। जो आसक्ति के वश में हो जाते हैं अर्थात जो राग और द्वेष के वश में हो जाते हैं, वे बाह्यजगत् में तो गतिशील रहते हैं, लेकिन अंतर्जगत् में ठहर जाते हैं। वहीं पर रम जाते हैं, वहीं रुक जाते हैं, गति उनकी स्थिर हो जाती है, गति होती ही नहीं। कब तक? जब तक उस आसक्ति की डोर से बँधे हुए हैं, तब तक। आसक्ति से छुटकारा मुश्किल है। थोड़ी-सी कठिन है बात।

आसक्ति की डोर ऐसी ही है। कई बार तो जन्मों-जन्मों तक, कई बार तो हजारों-हजारों साल तक वहीं रहते हैं। शरीर बदलते हैं, परिस्थितियाँ बदलती हैं, घटनाक्रम बदलते हैं, मन नहीं बदलता है एवं वह वहीं ठहरा रहता है। कोई आदमी हमारे बीच से चला जाता है। शरीर छूट जाता है, लेकिन आसक्त मन वहीं ठहर जाता है। वह जो भाव शरीर छोड़ते समय अपने साथ लेकर जाता है, जो मनोभूमि लेकर जाता है, जो मानसिकता लेकर जाता है, उसके चित्त में संगृहीत हो जाता है।

यही संस्कार बन जाता है, जो हमेशा साथ बना रहता है। वह जो संस्कार की डोर लेकर जाता है, जो कर्मसमूह व कर्म का परिपाक लेकर जाता है, वह उसे पल-पल खींचता रहता है। संस्कारों की अनजानी डोर खींचती रहती है। एकदूसरे को आकर्षित करती रहती है। इसीलिए मरने के बाद फिर वह अपना परिवार या जहाँ उसकी आसक्ति है, वहीं वह भ्रमण करता है। वह वहीं आस-पास जन्म ले लेता है।

आसक्त मन उसको ढूँढ़ता रहता है, खोजता रहता है। आसक्ति हमारे अंदर स्थिरता पैदा होने नहीं देती। मन को शांत नहीं होने देती है। आसक्ति हमें विवश करती रहती है, कर्म करने के लिए। हम कर्म अच्छे करें या बुरे करें, शुभ करें या अशुभ करें, पुण्य करें या पाप करें—राग और द्वेष के अनुसार करते हैं।

जिनके लिए हम आसक्त हैं, उनके लिए हम मर्यादा तोड़ने में संकोच नहीं करते। उनके लिए हम नियम तोड़कर, नीति से हटकर, विवेक से

विमुख होकर कर्म करते हैं। उसको खुश रखने के लिए, उसके लिए अच्छा करने के लिए, आदमी रिश्वत लेता है, घोटाले करता है। भारी मात्रा में धन जोड़ता है।

आसक्ति अहंकार उत्पन्न करती है। यह विवेक का हरण कर लेती है। आसक्ति से अहंकार, लोभ और कभी-कभी भय पैदा होता है। आसक्ति, अहंकार, लोभ और भय—सामान्य जीवन में कर्म करने के लिए प्रेरित करते हैं। इनके सहारे कर्म के पथ पर जो मनुष्य आगे बढ़ता है, उसको अनगिनत बंधन बाँधते चले जाते हैं। ऐसे कर्म हमें विषाद, अवसाद में डालते हैं।

इस तरह हमारे द्वारा बहुत सारे नकारात्मक कर्म, पाप को बढ़ाने वाले कर्म हो जाते हैं। फिर हमारे चित्त, चेतना और चिंतन पर आवरण चढ़ते जाते हैं। अँधेरा फैल जाता है। हम बँधते जाते हैं। हमारी चेतना बहिर्मुखी हो जाती है। हम अपने को भूलने लगते हैं। हम स्वयं को विस्मृत कर देते हैं। अपना स्मरण ही हमें नहीं रहता।

नकारात्मक कर्म हमें बाँधता है। ऐसे कर्म से हमें रास्ता निकालना पड़ेगा। इस कर्म ने हमें बंधन में डाल रखा है। इस कर्म ने हमें पीड़ित कर दिया है। हम स्वयं से और अपनों से वंचित हो गए हैं। हमारी परिस्थितियाँ विपन्न हो गई हैं। कर्म से बंधन बढ़ता है। भ्रम बढ़ जाता है। रास्ते नहीं मिलते।

हम अवसाद में घिर जाते हैं। कभी हम चुनौतियों से भागने की कोशिश करते हैं। सोचते हैं कि इन परिस्थितियों से भाग जाएँ। आत्महत्या करने की कोशिश करते हैं। जीवन में भ्रम पैदा होते हैं कि ऐसा करना इनसे बचने का उपाय है अर्थात कर्म की त्रासदी से बचने का उपाय है।

सत्य यह है कि पुण्य और पाप का सिलसिला जन्म-जन्मांतरों से चलता आ रहा है। आसक्ति कर्म कराती है, परंतु मन को श्रेष्ठ चीजों से जोड़ देने से सब कुछ बदल जाता है। कर्म में योग, कर्म में ध्यान, कर्म के साथ प्रार्थनाएँ, कर्म के साथ भक्ति जोड़ देने से कर्म की दिशा बदल जाती है। अहंकार, लोभ और भय की डगर पर चलने वाले कर्म की दिशा बदलने की आवश्यकता है। संदेश एक ही है कि कर्म करो, लेकिन उसे ईश्वर की ओर उन्मुख कर दो।

प्रश्न ये नहीं है कि हम कहाँ हैं, किस अवस्था में हैं, प्रश्न ये है कि हम किन भावनाओं के साथ हैं, किन विचारों के साथ हैं, किन धारणाओं और

अब कलियुग का अंत हो रहा है और जीर्ण-शीर्ण विचारों का ध्वंस हो रहा है। अब वह समय आ पहुँचा, जबकि उन्नति और विकास के कार्यों को आरंभ किया जाए। ठीक यही समय आने वाले सतयुग की तैयारी करने का है। ***—योगी श्रीअरविंद***

मान्यताओं के साथ हैं। कर्मयोगी परिस्थितियों के त्याग पर विश्वास नहीं करता। वह परिस्थितियों के परिवर्तन पर भी विश्वास नहीं करता। कर्मयोगी मनःस्थिति के परिवर्तन पर विश्वास करता है। मानसिकता के परिवर्तन पर विश्वास करता है।

मन बदलता है, तो सब बदल जाता है। कर्म की दिशा बदल देने से जीवन का लक्ष्य और उद्देश्य परिवर्तित हो जाता है। आसक्ति से मन कहीं ठहर जाता है। मन का स्वभाव है चिपकना। इसलिए मन को उस चीज से चिपका देना चाहिए, जो हमें ऊँचाई की ओर ले जाए, हमें आत्मिक विकास की ओर उन्मुख करे। ❑

शिवाजी को गढ़ने वाली माता जीजाबाई

माता जीजाबाई का मातृवत्सल हृदय समग्र राष्ट्र के लिए धड़कता था। उनका स्नेह-उत्स केवल अपने पुत्र के लिए नहीं, समग्र समाज के लिए झरता था और उनकी आँखों में एक परिवार के निर्माण का नहीं, अपितु श्रेष्ठ एवं समृद्ध साम्राज्य की स्थापना का स्वप्न था—उन्हें लोग आदरपूर्वक मातुश्री, माँ-साहिब, जिजाऊ, माता तथा राष्ट्रमाता कहकर संबोधित करते थे।

बालिका जीजा का जन्म चंद्रवंशीय श्री लखुजी जाधव (यादव) के घर में पौष पूर्णिमा शक संवत् 1519 (12 जनवरी, 1598) को हुआ। अभिलाषानुसार पुत्रीरत्न को प्राप्त कर पंचहजारी मंसबदार लघुजी परम प्रसन्न थे। उन्हीं के आस-पास रहती नन्ही बालिका देश की परिस्थिति, राज-काज आदि की बातें सुनती तथा अनेक प्रश्न पूछती हुई पिता को आश्चर्यचकित कर देती थी।

किशोरावस्था की आयु तक देश का समग्र चित्र उसके सामने स्पष्ट था। मुगलों की गुलामी और पुनः-पुनः होते आक्रमणों से ग्रस्त होती भारतीय जनता, दुर्बल और स्वप्नहीन-सी हो गई थी। मुगल सत्ताधीशों के अत्याचार, अनाचार के कारण हिंदू होने का स्वाभिमान जाता रहा। गुलामी का संस्कार मन पर छा गया।

प्रतिकार की शक्ति-सामर्थ्य का सर्वथा अभाव होने के कारण ईश्वर जैसे रखेगा, वैसे रहेंगे की मानसिकता बन गई थी। मुसलिम राजाओं के यहाँ नौकरी करना, उन्हीं का पक्ष लेकर हिंदू राजाओं से युद्ध की विभीषिका के दृश्यों को देख-सुनकर जीजा के ध्यान में स्पष्टता से आ गया कि प्रजा एवं हिंदू सेना अपने 'शाह' के लिए लड़ते हैं और मरते हैं। हिंदू अपनों के ही रक्त से धरा का हृदय रक्तरंजित बना रहा है, परंतु विजय शाह की हो रही है।

भूमि में शौर्य था, पराक्रम था, परंतु धरा शौर्यहीन थी। मंदिरों को तोड़कर मसजिदें बनाई जातीं, देवमूर्तियों को मसजिदों की सीढ़ियों में लगाया जाता, व्याकुल हो उठा था जीजा का मन अपने हिंदू देवालयों, श्रद्धास्थानों का मुसलिमों द्वारा अपमान देखकर। महिलाओं के अपहरण की घटती नित्यप्रति घटनाएँ देखकर वह बौखला उठती थी।

बालिका जीजाबाई सोचती—"किसकी विजय के लिए हिंदू मर रहे हैं? यह शौर्य अपनी स्वतंत्रता के लिए क्यों नहीं दिखाते? उनको प्रेरित कौन करेगा? उनके इन प्रश्नों का उत्तर देने में कोई भी समर्थ नहीं था।" तत्कालीन राष्ट्रजीवन की परिस्थिति से उभरे अनेक प्रश्नों को हृदय में रखे जीजा का विवाह सरदार मालोजी राजे भोंसले के बड़े बेटे शाहजी के साथ हो गया।

इस प्रकार शाहजी और जीजाबाई का सहजीवन प्रारंभ हुआ। राष्ट्रजीवन की वेदना लेकर चलने वाली सहधर्मिणी की बातों ने शाहजी के मन में एक महत्त्वाकांक्षा को जन्म दिया कि क्यों न दक्षिण में मुसलिम राज्यों पर रोक लगाकर सत्ता हिंदुओं के हाथों में केंद्रित की जाए?

उत्तर-दक्षिण के मुसलिम शाहों के पृथक रहने से ही यह संभव था, इसलिए वीर शाहजी इस

दिशा में प्रयत्न करने लगे, परंतु जीजाबाई के सामने और भी कुछ आना था। शाहजी निजामशाह के दृढ़ स्तंभ थे तथा लघुजी जाधव उनके कट्टर शत्रु थे।

ससुर एवं पिता के परिवारों के मध्य चलते युद्ध की विभीषिका-पितृ परिवार से होती जघन्य हत्याओं एवं देवरानी का मसलिमों द्वारा अपहरण कर लेने की घटनाओं ने जीजाबाई का मन हिला दिया, आखिर कब तक 'शाहों' के प्रति एक निष्ठा के वशीभूत होकर हिंदू लड़ते रहेंगे और लाचारी की मौत मरते रहेंगे? जीजाबाई ने ठान लिया कि स्वयं के लिए, अपने धर्म के लिए, देश की माँ-बहनों के लिए, अपने श्रद्धा-केंद्रों के लिए, लड़ने वाली मानसिकता का निर्माण करना है। ऐसा संकल्प जगा जीजाबाई में।

शिवनेरी के किले में पति से दूर रहती जीजाबाई अपनी कुलदेवी 'शिवाई' (दुर्गा) की आराधना, पूजा, उनके असुर विघातक, धर्म संस्थापक चरित्र का चिंतन-मनन कर उन्हीं के सान्निध्य में समय व्यतीत करती थीं। वे प्रार्थना करती थीं कि सतयुग में अदिति ने जैसे वामन के द्वारा परिस्थिति को मोड़ दिया था, वैसा सृजन करने की सामर्थ्य मुझे प्रदान करें। वे बार-बार प्रार्थना करतीं, 'देवी शिवाई आप मुझे ऐसा सुपुत्र दीजिए जो राष्ट्रधर्म, समाज का तारणहार बने।'

ऐसी मनःस्थिति के लिए प्रसन्नवदन जीजा अपने कुलदीपक को राष्ट्रदीपक बनाने की साधना में जुट गईं। उन्होंने अपनी संपूर्ण इच्छाशक्ति, भाव-भावनाएँ उदरस्थ शिशु पर केंद्रित कर दीं। गर्भस्थ शिशु का पोषण माँ के भोजन से निर्मित रस से होता है—इसलिए खान-पान, आहार-विहार सभी में माता जीजाबाई का विशेष ध्यान रहता। उनका प्रत्येक श्वास अधर्म के विनाश हेतु धर्म के प्रकाश की भावना से आपूरित रहता था।

वे शिवाई का दर्शन करते जाते समय पग-पग पर तेजस्वी एवं प्रभावी विजिगीषु वृत्ति के बालक की संकल्पना करतीं थीं। गर्भस्थ बालक जब पाँच महीने का हुआ तथा श्वास लेने लगा तो उसे स्मरण करातीं—"स्वराज्य स्थापना भगवान की इच्छा है, जो तुझे पूरी करनी है।" साथ-ही-साथ कृष्णनीति, चंद्रगुप्त, चाणक्य की कूटनीति का पठन-पाठन, चिंतन-मनन करके युग के अनुसार बालक को नीतिज्ञ बनाने का प्रयत्न करती थीं।

माता के साधनामय प्रयत्नों का आनंद उसके सम्मुख बालक के रूप में 19 फरवरी 1630 को गोद में आ गया। नाम रखा गया—'शिवाजी'। माँ शिवाई का वरदान, राष्ट्रनींव का दृढ़ स्तंभ। उस समय की 'धाय माँ' रखने की परंपरा को अमान्य कर जीजाबाई ने स्वयं के दूध से बालक का पोषण किया। पल-पल, क्षण-क्षण बालक पर माता का समग्र ध्यान रहता था।

जीजाबाई बालक शिवा को रामायण, महाभारत एवं इतिहास की वीरोचित कथाएँ सुनाया करती थीं। सत्य धर्म के लिए कैसे लड़ना है? कठिन प्रसंगों से युक्ति से मार्ग निकालना, कृष्ण का नायकत्व, राम की मर्यादा, गुरु आस्था सभी कुछ माँ ने सिखाया था। वे यह भी बतातीं—"नतमस्तक होना तो स्वयं के गुरुजनों एवं माँ शिवाई तथा आस्था-केंद्रों के सामने, पर यवनों के सामने कभी नहीं।"

माता के सान्निध्य में बालक शिवा का जीवनकुसुम विकसित हो रहा था। शिक्षा के लिए माँ ममता की साक्षात् मूर्ति तो थी ही, परंतु विश्वास का परमधाम भी थीं। माता के लालन-पालन की सतर्कता के अनेक उदाहरण इतिहास के पन्नों में बिखरे पड़े हैं।

एक बार राजस्थानी भाट माता जीजाबाई के दरबार में उपस्थित होकर महारानी पद्मिनी की

जौहर गाथा सुना रहे थे। सहसा शिवा उठकर खड़ा हुआ और जाने लगा, माँ ने पूछा—"कहाँ जा रहे हों?" "मैं यहाँ भयंकर गीत नहीं सुन सकता।" उत्तर सुनकर माता ने कहा—"इससे भी भयंकर घटनाएँ घट रही हैं, अत्याचार का कहर ढाया जा रहा है। तुम्हारी चाची को मुसलिम उठाकर ले गए थे। असहाय माता-बहनों की चीख गूँज रही है और तुम गीत सुनने से घबराते हो। धैर्य से बैठो, सुनो, प्रण करो। तुम्हें यह स्थिति बदलनी है—स्त्री का सम्मान पुनः प्रस्थापित करना है, मातृभूमि को स्वतंत्र कराना है। कायर मत बनो।"

माता अपने संपोषण और संस्कारों का परीक्षण भी बालक के व्यक्तित्व में करती रहती थीं। कुछ समय के बाद बालक शिवा को लेकर जीजाबाई पति के पास रहने आईं, परंतु चिंतित रहती थीं कि वहाँ का विलासितापूर्ण वातावरण शिवा को डिगा न दे।

इसलिए एक दिन उन्होंने कह दिया—"इसे मैं अपने अनुसार बनाऊँगी और बड़े पुत्र शंभाजी को आप सँभालें। शाहजी को बात स्वीकार करनी पड़ी और दोनों माँ-पुत्र दादा कोंडदेव के संरक्षण में पुणे आकर रहने लगे।"

जीजाबाई का बालक 'राष्ट्रनायक' के रूप में आकार लेता जा रहा था। पुणे राजधानी थी, जो लूट-पाट से ग्रस्त जनता की व्यथा-कथा की साक्षी थी। माता जीजाबाई के आने पर जनता के लोग उनसे मिलने आने लगे। तब जीजाबाई ने पाँच वर्षों में स्थिति सुधार की योजना बनाई।

बालक शिवा ने विधिपूर्वक स्वर्ण का हल भूमि पर चलाया। खेती हुई, पेट भरा, तत्पश्चात अगले चरण में घर-वस्त्र तथा महिलाओं के लिए आभूषण आदि की चिंता कर 'माँ साहब' ने सामाजिक कर्त्तव्य का निर्वाह प्रारंभ कर दिया। कृष्णवर्णी मावल बहुल क्षेत्र होने के कारण 'मावले' बालकों को शिवा का साथी बनाकर भेदभावरहित वृत्ति का उन्होंने परिचय दिया।

इन मावले बालकों का भी संस्कारण बालक शिवा के साथ प्रारंभ हो गया। जीजाबाई 'शिववा' को एक राजा के रूप में विकसित करना चाहती थीं। इसी आधार पर उनके शिक्षण की व्यवस्था की गई। उन्हें श्रुति, स्मृति, पुराण, राजनीति सभी शास्त्र, रामायण-महाभारत, व्यायाम, वास्तुविद्या, सामुद्रिक ज्ञान आदि का पाठ पढ़ाया गया।

इसके अलावा धनुर्विद्या, हाथी-घोड़े तथा रथों पर चढ़ना-उतरना, दौड़ना, छलाँग लगाना, तलवार, चक्र, भाला, पट्टा-शक्ति युद्ध, बाहुयुद्ध, दुर्गम दुर्ग भेदना, दुर्गम स्थानों से छिपकर निकलना, निशाना साधना आदि की शिक्षा भी उनको प्रदान की गई।

उन्हें मन की गहराई तक पहुँचाना आदि विद्याओं के साथ-साथ सादगीपूर्ण आचार-चारित्र्य, साधुओं, गुरुजनों, नारी के प्रति परम श्रद्धा का भाव भी माँ जीजाबाई ने सिखाया। उक्त समस्त गुणों को हम शिवाजी के कृत्यों में प्रत्यक्ष रूप से देख सकते हैं।

उनके द्वारा किलों को जीतना, अफजल खाँ का वध, अनेक मुसलिम सरदारों से वंचना देकर युद्ध, खतरनाक औरंगजेब की कैद से शंभाजी के साथ सुरक्षित निकलना आदि घटनाएँ जहाँ उनके तेजस्वी शौर्ययुक्त व्यक्तित्व की कथा कहती हैं, तो वहीं उनकी माता के सर्वांगीण विकास से युक्त राष्ट्रीय लोकनायकत्व के गुण-युक्त संस्कार प्रदान करने की गौरव-गाथा वर्णित करती हैं।

शिवाजी के जीवन में जब-जब निराशा के क्षण आए, तब-तब उनकी माता प्रेरक मार्गदर्शक के रूप में सामने खड़ी दिखाई दीं। ऐसा प्रचलित है कि औरंगजेब से संधि करते समय 23 किले

शिवाजी को उन्हें सौंपने पड़े। जिसके दु:ख के कारण उन्होंने स्वयं को एक कक्ष में कैद कर लिया—'माँ! मैं मरना चाहता हूँ।'

व्यथित एवं क्रोधित हुई माँ ने कहा—''शिवबा! क्षत्रियों का तो आभूषण वीरता है। आत्महत्या कायरों का लक्षण है। आपको ही हिंदवी स्वराज्य का स्वप्न साकार करना है। आप मेरे पुत्र हैं।''

शिवाजी का विश्वास पुन: लौटा और वे अपने कर्त्तव्य कर्म में जुट गए। 32 साल की अविरल साधना के उपरांत ज्येष्ठ सुदी त्रयोदशी 1596 को शिवाजी का राज्याभिषेक हुआ। हिंदूपद पादशाही हिंदवी राज्य की प्रस्थापना का स्वप्न साकार हुआ। जीजाबाई को लगा मेरा जीवन सार्थक हो गया।

इन क्षणों में माता का सर्वांग अश्रुओं से भीग गया; क्योंकि उनका शिवबा छत्रपति शिवाजी सिंहासनाधीश्वर बन गया था। माता की असीम साधना और पुण्यार्जन का यह अवसर था। राज्याभिषेक के दूसरे दिन स्वप्नद्रष्टा माँ पाचाड़ आईं तथा बारहवें दिन यह तेजोमय मातृरूप व्यक्तित्व अनंत में विलीन हो गया।

वस्तुत: जीजाबाई का अणु-अणु, श्वास-श्वास मातृत्व की गरिमा से परिपूर्ण था। उनकी सृजनशीलता, धैर्य, अदम्य इच्छाशक्ति, हिंदुत्व के प्रति उनका स्वाभिमान—सभी के मन को सदा प्रेरणा देते रहेंगे। ❑

चक्रवर्ती सम्राट भरत को भूमंडल जीतने के बाद अहंकार हो गया। वह इंद्रदेव के पास जाकर बोले—''मैंने संपूर्ण विश्व पर आधिपत्य कर लिया है, अपनी कीर्ति को अमर बनाने के लिए वृषभाचल पर्वत पर अपना नाम अंकित करना चाहिए।''

इंद्रदेव ने इस हेतु अपनी स्वीकृति प्रदान की। राजा भरत ने वृषभाचल पर्वत पर जाकर देखा तो उन्होंने पाया कि पूरे पर्वत पर चक्रवर्ती सम्राटों के नाम अंकित हैं, एक नाम लिखने का स्थान भी रिक्त नहीं है। वे खिन्न होकर वापस लौट आए और इंद्रदेव से अपनी व्यथा कही। इंद्रदेव बोले—''आप चिंता न करें। आप किसी का नाम मिटाकर अपना लिख दें। सहस्त्रों वर्षों से यही परंपरा चली आ रही है।''

यह सुनकर भरत बोले—''तो भविष्य में कोई मेरा भी नाम मिटाकर वहाँ अपना नाम लिख जाएगा।'' इंद्र बोले—''उस संभावना से इनकार नहीं किया जा सकता; क्योंकि आदिकाल से वर्तमान तक असंख्य चक्रवर्ती सम्राट हुए हैं और आगे भी होते रहेंगे।'' यह सुनकर भरत का अहंकार विगलित हो गया और वे सोचने लगे कि 'इस विराट जगत् में अपना अस्तित्व है ही कितना? यह सोचना कितना गलत है कि जो कार्य हमने किया है, वह किसी ने न किया होगा और भविष्य में भी कोई नहीं करेगा। दुनिया में सदैव विभूतिवान पैदा होते रहे हैं और होते रहेंगे।' अहंकार जाते ही भरत के मन में ऐसी शांति आई, जैसी पहले कभी न आई थी।

गंगा के बाघ की रक्षा

डॉल्फिन सागर में विचरण करने वाला एक सुपरिचित एवं लोकप्रिय मछलीनुमा जलीय जीव है, जो विश्व के कई क्षेत्रों में पाया जाता है। हालाँकि यह मछलियों से भिन्न एक स्तनपायी मांसाहारी जीव है, जिसका इनसान के साथ मित्रवत् व्यवहार देखा जाता है। यह सबसे बुद्धिमान जीवों में से भी एक है, जिसे प्रशिक्षण देकर तमाम तरह के करतब सिखाए जा सकते हैं। यह बात दूसरी है कि इनसान मांस से लेकर बहुमूल्य यकृत तेल के लिए इसका शिकार करता देखा जाता है।

इसके प्राकृतिक परिवेश के साथ इनसान के अमानवीय हस्तक्षेप के चलते इसका स्वच्छंद विचरण प्रभावित हुआ है और यह जलीय जीव अस्तित्व के संकट से गुजर रहा है। आश्चर्य नहीं कि पिछले दशकों में इसकी संख्या में खासी गिरावट आई है। इस कारण विश्व भर के समझदार लोगों, संगठनों एवं सरकारों द्वारा इसके संरक्षण के तमाम प्रयास किए जा रहे हैं।

भारत में भी टाइगर प्रोजेक्ट की तर्ज पर डॉल्फिन प्रोजेक्ट के नाम से डॉल्फिन के संरक्षण का प्रयास वर्ष—2020 में प्रारंभ हुआ था, जिसके उत्साहवर्द्धक परिणाम देखने को मिल रहे हैं। इसके अंतर्गत भारतीय वन्यजीव संस्थान द्वारा वर्ष—2021 से 2023 तक इस जलीय जीव की जनगणना की गई थी, जिसके आधार पर इसी वर्ष मार्च माह में पता चला कि भारत में कुल 6327 डॉल्फिन नदियों में विचरण कर रही हैं, जिनमें सबसे अधिक उत्तर प्रदेश में (2397), फिर बिहार (2220), झारखंड (162), बंगाल (815) तथा असम की ब्रह्मपुत्र (635) में पाई गई हैं।

पंजाब की व्यास नदी में इनकी संख्या मात्र 3 दर्ज की गई है। डेढ़ दशक पूर्व यहाँ एक दर्जन तक सिंधु डॉल्फिन की संख्या दर्ज हुई थी। पाठकों को सुनकर आश्चर्य हो सकता है कि सागर में रहने वाली डॉल्फिन को भारत के इन राज्यों में कैसे पाया गया तो यहाँ पर भारत में पाई जाने वाली डॉल्फिन के संदर्भ में कुछ प्रकाश डालना उचित होगा, जो पाठकों के ज्ञानवर्धन के साथ विलुप्ति के कगार पर खड़े इस जीव के प्रति कुछ संरक्षण- संवेदना भी जगा सके।

भारत में पाई जाने वाली डॉल्फिन का आकार सागर की डॉल्फिन से छोटा व थोड़ी भिन्नता लिए होता है। इनका औसतन भार 68 किलो होता है व इनकी लंबाई 8 फुट तक होती है। इनकी थूथन पतली व लंबी होती है। तैरने में सहायक इनके फिन अर्थात पंख चौड़े होते हैं और इनका पेट भी मोटाई लिए होता है। सागर में पाई जाने वाली डॉल्फिन से इनकी सबसे बड़ी भिन्नता यह है कि इनकी आँख नहीं होती।

ये अपने मस्तिष्क से निस्सृत होने वाली अल्ट्रासोनिक तरंगों के माध्यम से अपने परिवेश का अनुमान लगाती हैं और इसी आधार पर शिकार करती हैं। ये छोटी मछलियों व जलीय जीवों का शिकार करती हैं और गंगा जी में सबसे बड़े शिकारी के रूप में जानी जाती हैं, जिस कारण इन्हें गंगा का बाघ भी कहा जाता है। गंगा नदी के इस अंधे बाघ की खोज सन् 1801 में हुई थी। भारत की नदियों में पाई जाने वाली डॉल्फिन दो वर्ग में आती हैं,

एक हैं इंडस डॉल्फिन, जो सिंधु व व्यास नदी में मिलती हैं।

दूसरी हैं गंगा डॉल्फिन जो गंगा, ब्रह्मपुत्र व इनकी 28 सहायक नदियों में पाई जाती हैं। इसके साथ ये नेपाल व बांग्लादेश की मेघना व कर्णफुली-सांगु नदियों में भी पाई जाती हैं। इसका वैज्ञानिक नाम है प्लैटनिस्टा गैंगेटिका। वहीं इसके श्वास लेते समय उत्पन्न होने वाली ध्वनि के कारण इसे लोकप्रिय रूप में सुसु भी कहा जाता है।

नदी की ये डॉल्फिन मात्र मीठे जल में ही रह सकती हैं। समुद्र के खारे जल में ये जीवित नहीं रह पातीं। मालूम हो कि यह जल के अंदर 30 से 120 सेकंड तक ही रह सकती हैं और साँस लेने के लिए इन्हें सतह पर कुछ सेकंड के लिए आना पड़ता है। गंगा डॉल्फिन की मादाएँ नर से बड़ी होती हैं और हर दो से तीन वर्ष में एक बच्चे को जन्म देती हैं।

वयस्क होने तक बच्चा माँ के साथ यात्रा करता है। अमूमन ये अकेले या छोटे समूहों में पाई जाती हैं और इनका जीवनकाल लगभग 28 वर्ष का होता है। हाल ही की जनगणना के आधार पर इनकी स्थिति कुछ बेहतर प्रतीत हो रही है, लेकिन मानवीय हस्तक्षेप के कारण यह कोमल एवं संवेदनशील जलीय जीव अस्तित्व के संकट से गुजर रहा है। नदियों पर बाँध बनने से इसका निर्बाध विचरण प्रभावित हुआ है।

नदियों में प्रदूषण इसको सीधेतौर पर प्रभावित कर रहा है। मछलियों के अत्यधिक शिकार के साथ नदी की डॉल्फिन भी चपेट में आ रही है। फिर इसके मांस व बहुमूल्य तेल के लिए लालची लोग इसका अमानवीय एवं गैरकानूनी शिकार भी कर रहे हैं। मालूम हो कि डॉल्फिन, नदी के जलीय पारिस्थितिकी तंत्र के स्वास्थ्य का एक मानक सूचक है।

इस महत्त्वपूर्ण तथ्य को देखते हुए डॉल्फिन को वर्ष—2009 में राष्ट्रीय जलीय जीव घोषित किया गया था। इसके संरक्षण-संवर्द्धन को ध्यान में रखते हुए बिहार प्रांत के भागलपुर जिले में वर्ष—1991 में ही विक्रमशिला गंगा डॉल्फिन अभयारण्य की स्थापना की गई थी, जो गंगा जी का 60 किमी लंबा क्षेत्र है।

डॉल्फिन उत्तर प्रदेश और असम का भी घोषित प्रांतीय जलीय जीव है। मालूम हो कि हर वर्ष 5 अक्टूबर को राष्ट्रीय गंगा नदी डॉल्फिन दिवस भी मनाया जाता है। जलीय पारिस्थितिकी तंत्र में डॉल्फिन के योगदान को देखते हुए महत्त्वपूर्ण हो जाता है कि इसका सुनियोजित संरक्षण किया जाए। सरकार के प्रयास अपनी जगह हैं एवं भारतीय जलीय जीव संस्थान इस दिशा में स्तुत्य कार्य कर रहा है।

पंचभूत को लेकर जो देह है, वही 'स्थूल शरीर' है।

मन, बुद्धि, अहंकार और चित्त को लेकर 'सूक्ष्मशरीर' है।

जिस शरीर से ईश्वर का आनंद मिलता है, वह 'कारणशरीर' है।

साथ ही आम जनता का भी कर्त्तव्य बनता है कि डॉल्फिन के प्राकृतिक परिवेश के साथ छेड़खानी न करे। नदियों को हर तरह के प्रदूषण से बचाएँ। कोई इसका शिकार करता पाया जाता है, तो उस पर तत्काल सख्त कार्रवाई की जाए।

इन प्रयासों में ही इस उपयोगी एवं प्यारे से जलीय जीव का संकटग्रस्त अस्तित्व बच पाएगा, जो न केवल नदी के पूरे पारिस्थितिकी तंत्र के स्वास्थ्य एवं समृद्धि से जुड़ा हुआ है, बल्कि मानव जीवन के भी अस्तित्व और उसकी प्रसन्नता एवं खुशहाली के साथ भी किसी-न-किसी रूप में आबद्ध है। ❑

नारी सशक्तीकरण की दिशा में यों बढ़ें कदम

हमारा समाज एक भयंकर जटिलता से गुजर रहा है। यहाँ पर पुरुषों को स्त्रियों से अधिक मान-सम्मान और वर्चस्व का अधिकारी माना जाता है। हम यह समझते हैं कि पुरुष वर्ग क्योंकि प्रधानतः हर दृष्टि से स्त्री वर्ग से आगे रहता है तो क्यों न उसे ही इस समाज का संरक्षक और पालनकर्त्ता मान लिया जाए, परंतु ऐसा नहीं है। जिस समाज में पुरुषों को स्त्रियों से अधिक योग्य एवं सामर्थ्यशाली माना जाता है वह कभी विकास नहीं कर सकता है, क्योंकि इस समाज के संचालन हेतु पुरुष एक पक्ष है एवं शेष आधे पक्ष के महत्त्व एवं गरिमा को नकारा नहीं जा सकता है।

हम मनुष्य कैसे बने ? क्योंकि किसी स्त्री ने हमें अपने गर्भ में पाला एवं तदुपरांत हमें जीवन प्रदान किया। हम असहाय होते, यदि किसी माँ का सहारा हमें बचपन से न मिला होता। हम अपनी आधारभूत संरचना में स्त्री वर्ग पर निर्भर हैं। दूसरा कि हमको जो जन्म मिला है वह अपने श्रेष्ठ सुयोग को तभी प्राप्त करता है, जब जीवन के प्रत्येक क्षेत्र में हम स्त्रियों का सम्मान करते हैं और उनकी उन्नति की दिशा में कार्य करने की सोच पाते हैं।

ऐसा इसलिए क्योंकि यदि स्त्रियाँ आगे आएँगी तो भविष्य की उज्ज्वल संभावना के द्वार खुलेंगे। उन्हें परनिर्भर नहीं रहना चाहिए—यह समय उनके समूचे उत्थान का है, आर्थिक, सामाजिक, राजनीतिक और आध्यात्मिक रूप से उन्हें स्वतंत्र होना चाहिए। हम यह तभी कर पाएँगे, जब एक पुरुषप्रधान समाज में नारियों का सच्चा गौरव प्रकट होकर आए तथा उन्हें मानव जाति की उन्नति में महत्त्वपूर्ण योगदान देने का अवसर मिल सके।

मात्र नारी सशक्तीकरण की बात कहकर कोई समाधान नहीं होने वाला है। आज का दौर जनसंख्या बढ़ोत्तरी और समाज में अनाचार और क्लेश के बढ़ने के रूप में भी देखा जा रहा है। यहाँ पर नारियों को आगे आना चाहिए, ताकि वो समाज की मूलभूत समस्या को उजागर कर सकें—वह है मनुष्य की वृत्ति।

जब स्वार्थ हावी हो जाता है, तब मानवीय गरिमा का दोहन और चाल-चलन की दिशा में लोग बढ़ चलते हैं। तब किसी राष्ट्र का प्राचीन गौरव धुँधली मान्यताओं और असंगत नीति-व्यवहार में जा जकड़ता है। तब पुरुष को स्त्री से और स्त्री को पुरुष से पूर्ण सामंजस्य की स्थिति में नहीं देखा जाता है।

तब मनुष्य अपने अंतस्थ दृष्टिकोण से परे अज्ञान से चलता दिखाई देता है, तब यदि पाप और विद्वेष बढ़ता है और उसके भी मूल में स्त्री वर्ग के साथ कई प्रकार की विसंगतियाँ खड़ी होती हैं—इसे क्या कहा जाए ? मानवता आज जिस मोड़ पर खड़ी है वहाँ से उसे एक ही चीज बचा सकती है, वह है नारियों का आगे आना एवं बढ़-चढ़कर अपनी प्रतिभा का परिचय देना।

उन्हें विशेष किस अर्थ में बनाया गया है। वे समाज की जननी ही नहीं इसकी निर्मात्री तथा वास्तविक शोभा भी हैं। स्त्रियों को दूसरों को एकजुट रखना तथा उनमें बल-अभिवृद्धि प्रदान करने का विशेष गुण प्राप्त है। वे प्राकृतिक रूप से

हमारे शरीरों का निर्माण करने वाली तो हैं ही, साथ ही वे मानव समाज की सच्ची सखा और मार्गदर्शक भी हैं।

जिस प्रतिभा-कौशल से वे परिवार का संचालन करती हैं तथा जैसे गुण-विशेष उन्हें प्राप्त हुए हैं, उसे देखते हुए यही लगता है कि समाज को उनकी अत्यधिक आवश्यकता है। आप उन्हें शिक्षित करिए, विचार रूप में अपने को प्रस्तुत करने का अवसर दीजिए, ऐसी व्यवस्था बनाइए कि समाज में स्त्रियाँ कहीं दमित न रह जाएँ।

आप उनके सच्चे सुपोषक बनिए, कभी भी अपने आस-पास उनका निरादर होता न स्वीकार कीजिए। जब आप इस प्रकार की संवेदना विकसित कर लेंगे तो देखेंगे कि वातावरण कैसे आश्चर्यजनक रूप से परिवर्तित होता जाता है। स्त्रियों की महानता इसी में है कि वे इस समाज में अपनी सच्ची भूमिका को पहचानें।

उन्हें पता रहे कि उनका कर्त्तव्य मात्र घर की चहारदीवारी तक ही सीमित नहीं है तथा वे किसी व्यवस्था की गुलाम बनकर रहने के लिए पैदा नहीं हुई हैं। वे अपने अनुसार विचरण करने में स्वतंत्र हैं, परंतु उन्हें यह ध्यान रहे कि वे इस समाज की निर्धात्री भी हैं। यदि वे जाग जाएँ तो एक स्वस्थ, सुकेंद्रित एवं परिपूर्ण समाज के निर्माण में देरी नहीं रह जाएगी।

स्त्रियों का जागना आवश्यक है। जरूरत है कि समाज उन्हें राजनीतिक मंच दे, खेल-व्यवसाय में अच्छे अवसर प्रदान करे एवं यह देखे कि किस क्षेत्र द्वारा वह अपनी प्रतिभा का अधिकाधिक विस्तार कर सकती हैं। उन्हें अज्ञान में मत रहने दीजिए, उनकी भावनाओं का सम्मान करिए और याद रखिए कि मनुष्य की गरिमा सर्वाधिक मूल्यवान है। यदि वह है तो कोई भी समाज अपने उत्कर्ष की प्राप्ति से वंचित नहीं रह सकता है।

भारत अकेला ऐसा देश है, जिसके पास मानवीय उत्थान-गौरव की अद्भुत मिसाल है। जिसके ऋषि-मुनियों ने सदा से एकत्व की प्रेरणा से सबको आप्लावित किया। जहाँ से नर-रत्न निकले एवं उन्होंने संपूर्ण जगती को अपने ज्ञान के आलोक में, अपनी करुणा के जलाशय में समेट लिया। जहाँ से मानवता का वह सूर्योदय हुआ, जिसने हर प्राणी की पीड़ा को अपना समझा।

वह भारत जिसकी रगों में आज भी वही तप-तेज, वह अद्भुत पराक्रम विद्यमान है, जिसने सदियों भूलोक को गौरवान्वित किया। ऐसे भारत में पैदा होकर उसी की संस्कृति की मुख्य विशेषता नारी-वर्ग को दैवी भूमिका में प्रस्थापित करने के उद्देश्य को हम दुर्भाग्यवश भूल गए।

देवता भी उसी शक्ति की पुकार लगाते हैं तथा जब कभी देवताओं की हार होती है तो वही दुर्गा

उत् क्रामातः पुरुष माव पत्था

अर्थात हे पुरुषो! ऊँचे उठो-नीचे मत गिरो। —*अथर्ववेद 8/1/4*

का स्वरूप बन उन्हें विजय दिलाती है। ऐसी जननी को हमने क्या बना दिया, हम उसके विशेष महत्त्व को समझ नहीं पाए। हमारी आत्मा कलुष से जकड़ी रह गई और हमारा अंतस् सोया पड़ा नारी दुर्दशा को देखता ही रह गया। यह क्या हुआ भारत तेरे संग?

आज मातृभूमि की पुकार है—सोई संवेदना का जागरण। हमारे भीतर से ये उद्गार उभरें कि हमें मानवता के हित जीना है और जननी को उसका वास्तविक स्थान दिलाना है। जब नारियाँ उठ खड़ी होंगी तभी यह समाज सही दिशा में बढ़ पाएगा, उनका वर्चस्व समूची धरा को अपने आलोक में ले लेगा एवं तब भारत अन्याय-असुरता के दमन हेतु तथा ईश्वरोपासना की उच्चतर गति की ओर उन्मुख हो सकेगा। ❐

ब्रह्मवर्चस-देव संस्कृति शोध सार—197

भक्तिकाल के कवियों पर शोध

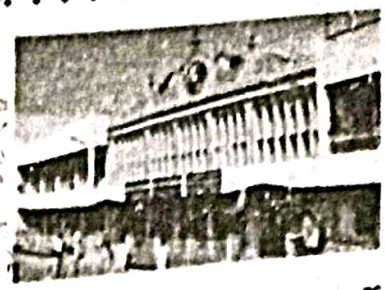

भारतवर्ष की पुण्यभूमि पर संगीत का स्थान एवं स्वरूप परमात्मा के समकक्ष असीम, अनंत और आनंदमय है। इसकी उत्पत्ति भी सृष्टि के साथ-साथ ही हुई है। सृष्टि के प्रत्येक आयाम से संगीत के तार जुड़े हुए हैं। संगीत का शाश्वत एवं आदि स्वर ही प्रकृति की आत्मा बनकर समस्त संसार में आनंद और माधुर्य की सृष्टि करता रहा है। मानव जीवन की रचनात्मकता ने इसी शाश्वत संगीत को अपनी कलात्मकता से अनेक रूप प्रदान किए हैं और इन सभी रूपों का अपना वैशिष्ट्य एवं महत्त्व होने के साथ-साथ वर्तमान के लिए उपादेयी तत्त्व भी इनमें मौजूद हैं।

संगीत के इन्हीं अनेक रूपों में से एक विशिष्ट रूप है—भक्ति संगीत का। भक्ति संगीत भक्त की भगवान के प्रति समर्पित प्रेम भावना, समर्पण पुकार का श्रेष्ठतम माध्यम रहा है। विकास के ऐतिहासिक कालखंडों में भक्ति संगीत के अलग-अलग रूप एवं शाखाएँ प्रकट हुए हैं और संसार की परिवर्तनशीलता के मध्य इनकी भारतभूमि पर सुदीर्घ परंपराएँ भी मौजूद रही हैं।

इन्हीं परंपराओं में भक्त कवियों की वाणी से प्रस्फुटित दिव्य संगीत हमारी सांस्कृतिक विरासत में भक्ति संगीत बनकर गौरव गर्व की अनुभूति कराने वाला है। भक्ति संगीत के उद्भव, विकास, व्यापक स्वरूप एवं महत्त्व को केंद्र में रखकर देव संस्कृति विश्वविद्यालय के संगीत विभाग के अंतर्गत विगत दिनों एक विशिष्ट शोध अध्ययन का कार्य संपन्न किया गया है।

यह शोध अध्ययन वर्ष-2022 में शोधार्थी शिवांगी शर्मा द्वारा विश्वविद्यालय के श्रद्धेय कुलाधिपति डॉ० प्रणव पण्ड्या जी के विशेष संरक्षण एवं डॉ० शिवनारायण प्रसाद के निर्देशन में पूर्ण किया गया है।

भारतीय शास्त्रीय संगीत विषय में संपन्न होने वाले इस शोध का शीर्षक है—'**भक्तिकाल के प्रमुख कवियों का संगीत के विकास में योगदान**'—एक विवेचनात्मक अध्ययन। इस अध्ययन को शोधार्थी द्वारा कुल पाँच अध्यायों में विभाजित कर प्रस्तुत किया गया है।

प्रथम अध्याय '**संगीत की अवधारणा एवं इतिहास**' है। इसके अंतर्गत संगीत का अर्थ एवं परिभाषा, संगीत की उत्पत्ति एवं भारतीय संगीत का विकासक्रम व इसके स्वरूप की विस्तृत विवेचना प्रस्तुत की गई है। संगीत में मानवीय चेतना में अध्यात्म तत्त्व प्रकाशित हो आनंद की सृष्टि करता है।

सभी कलाओं में संगीत कला को श्रेष्ठ कहा गया है; क्योंकि धर्म, अर्थ, काम, मोक्ष—चारों पुरुषार्थ की प्राप्ति एवं लौकिक व अलौकिक दोनों सुखों की सिद्धि कराने में संगीत ही समर्थ है। संगीत शब्द की उत्पत्ति 'गीत' शब्द में 'सम्' उपसर्ग लगने से हुई है, जहाँ 'सम्' का अर्थ सुचारु या सही ढंग से तथा 'गीत' का अर्थ गायन से है। अतः सही-सुचारु रूप से गाने को ही संगीत कहा जाता है। यथा—**सम्यक् प्रकारेण यद्गीयते तत्संगीतम्**। इसमें गायन, वादन और नृत्य—इन

तीनों कलाओं का समावेश है। इसके दो रूप हैं—लौकिक व आध्यात्मिक।

इसकी उत्पत्ति वेद के बीज मंत्र **'ओम्'** से मानी जाती है। ओम् से नाद, नाद से स्वर एवं स्वर से संगीत ने जन्म लिया है। भरतमुनि के नाट्यशास्त्र में इस संदर्भ में विस्तृत वर्णन प्राप्त होता है। विकासक्रम की दृष्टि से वैदिक युग से लेकर, उपनिषदों, पुराणों, महाकाव्यों, जैन, बौद्ध और मौर्यकाल से लेकर वर्तमान तक भारतीय संगीत की लौकिक एवं अलौकिक साधन-सिद्धि का व्यापक स्वरूप मौजूद है।

इसके साथ ही हमारी संस्कृति में आदिकाल से भक्ति और संगीत का अटूट रिश्ता और सामंजस्य रहा है। प्रारंभ से ही दोनों धाराएँ एकदूसरे की पूरक बनकर विद्यमान रही हैं। भक्तिधारा में वल्लभ संप्रदाय हो या अष्टछाप के कवि—सभी ने भक्तिपरक पदों को रागों में पिरोया है। सगुण भक्ति में सूर, तुलसी, मीरा आदि ने उपासना गाई तो निर्गुण धारा की रचनाएँ भी संगीत से परिपूर्ण हैं।

अध्ययन का द्वितीय अध्याय है—**'भक्तिकाल का संक्षिप्त परिचय एवं परिस्थितियाँ।'** इस अध्याय में भक्ति का अर्थ एवं परिभाषा, भक्तिकाल का परिचय, भक्तिकाल की विभिन्न परिस्थितियाँ एवं भक्तिकाल की प्रमुख धाराओं का विवेचन किया गया है। भक्तिकाल का समय प्रमुखतया उस काल से संबंधित है, जब भागवत धर्म के प्रचार-प्रसार हेतु भक्ति-आंदोलन का प्रारंभ हुआ था।

तब लोक-प्रचलित भाषाओं में भक्ति-भावना से ओत-प्रोत व्यापक रचनाएँ हुईं, जिनसे वैष्णव धर्म, शैव, शाक्त, बौद्ध, जैन आदि सभी प्रभावित हुए। चौदहवीं सदी से लेकर सत्रहवीं सदी के मध्य तक के काल को भारत में भक्तिकाल के रूप में देखा गया। यद्यपि इसके पूर्ववर्ती और परवर्ती कालों में भी भक्ति संगीत का व्यापक रूप मौजूद रहा है।

भारतीय इतिहास में भक्तिकाल का महत्त्व इसलिए भी ज्यादा है; क्योंकि इस समय की राजनीतिक, सामाजिक एवं सांस्कृतिक परिस्थितियाँ अत्यंत चुनौतीपूर्ण व परिवर्तनशील रही हैं। ऐसे में भारतीय जीवन के श्रेष्ठतम मूल्यों—आदर्शों से जोड़े रखने का कार्य भक्तिकाल के पुरोधाओं ने बखूबी निभाया है।

इस काल में दो प्रमुख मुसलिम वंशों का—पठान व मुगलों का भारतभूमि पर वर्चस्व रहा, सामाजिक परिवेश भी आक्रांताओं के डर व आंतरिक भेदभाव से विद्रूप बना रहा, लेकिन सांस्कृतिक चेतना की लौ—धार्मिक भक्ति-भावना व तात्त्विक चिंतन के माध्यम से अक्षुण्ण रूप से प्रदीप्त बनी रही।

इसी पृष्ठभूमि पर भक्ति आंदोलन का जन्म हुआ, जिसकी छाप इस काल की सभ्यता, संस्कृति और कलाओं में विद्यमान हो हमारी विरासत की समृद्धता को दरसाती है। भक्ति काव्य, भक्ति साहित्य और भक्ति संगीत की दृष्टि से यह स्वर्णिम काल रहा है।

तृतीय अध्याय **'भक्तिकालीन संगीत का उदय एवं विकास'** है। अध्ययन के इस सोपान में भक्तिकालीन संगीत का उदय, भक्तिकालीन संगीत की स्थिति, विशेषताओं एवं प्रभाव की विस्तार से विवेचना प्रस्तुत की गई है।

भारतीय संस्कृति में भक्ति का भाव आदिकाल से धार्मिकता-आध्यात्मिकता के रूप में विद्यमान रहा है। योग, अध्यात्म शास्त्रों में, महाकाव्यों में भक्ति तत्त्व की मार्मिक व्याख्या है। इसी भक्ति तत्त्व को मध्ययुगीन भक्ति आंदोलन ने हिंदू-सनातन संस्कृति के पुनर्जागरण का मुख्य साधन बनाया।

निर्गुण और सगुण उपासना के रूप में भक्ति आंदोलन का प्रगाढ़ व्यापक स्वरूप प्रकट हुआ। निर्गुण की ज्ञानमार्गी व प्रेममार्गी तथा सगुण की राम व कृष्ण भक्ति की धाराओं ने भक्ति संगीत को सुदृढ़ आधार प्रदान किया। शास्त्रों, सूत्र ग्रंथों एवं महान भक्तों की वाणी में भक्ति तत्त्व के जितने भी रूप दरसाए गए हैं, उनसे संबंधित संगीत का विकास भक्तिकाल में ही किया गया है।

भक्ति संगीत के मनोवैज्ञानिक प्रभाव से सामाजिक जीवन भी तृप्त रहा और आध्यात्मिक साधना के रूप में आत्मिक जीवन को भी पूर्णता प्राप्त हुई। इसके साथ ही भक्तिकाव्य के पदों, गीतों में राग, रागनियों, ख्याल, कव्वाली आदि संगीतात्मक पहलुओं का भी विकास हुआ। भक्ति गायन में गीत, भजन, कीर्तन के माध्यम से भक्तिकाल को परवर्ती काल में भी भक्ति संगीत ने समान रूप से जनसामान्य से लेकर संतों, उपासकों और संगीत प्रेमियों को प्रभावित किया है।

शोध का चतुर्थ अध्याय है—**'भक्तिकाल के प्रसिद्ध कवि एवं इनका संगीतक दृष्टिकोण।'** इसके अंतर्गत भक्तिकाल के सत्रह प्रसिद्ध कवियों की रचनाओं एवं उनसे संबंधित संगीत के आयामों की विस्तृत व्याख्या प्रस्तुत की गई है।

ये प्रसिद्ध कवि हैं—संत कबीरदास, हरिदास, तुलसीदास, मलूकदास, दादूदयाल, मीराबाई, अष्टछाप के कवि, सूरदास, परमानंददास, कृष्णदास, गोविंद स्वामी, चतुर्भुजदास, नंददास, छीतस्वामी, गुरुनानक, सूफी कवि और संत त्यागराज एवं पुरंदर दास। भक्तिकाल के इन सभी प्रसिद्ध कवियों ने अपनी रचनाओं, पदों में काव्य कला एवं संगीत कला की विविध शैलियों का प्रयोग किया है।

भक्ति की गेय पदों वाली रचनाएँ—राग, नाद, छंद, लय, ताल, भाषा, शैली आदि की दृष्टि से अत्यंत विशिष्ट और प्रेरक हैं। संतों, भक्त कवियों ने अपने काव्य पदों द्वारा संगीत को माध्यम बना कर जनसमाज में धार्मिक, सांस्कृतिक और मानवीय भावनाओं को प्रतिष्ठापित करने का अद्‌भुत कार्य किया है। उपासना एवं भक्ति-भावना से ओत-प्रोत भक्तकवियों की संगीतमय रचनाओं ने भारतीय जनमानस को जीवन जीने का नया मार्ग दिखलाया।

इस महान कवियों की वाणी ने भारतीय संगीत की समृद्ध परंपरा को और ज्यादा उज्ज्वल बनाया तथा लोकरंजन के साथ-साथ भारतीय संगीत की धार्मिक एवं आध्यात्मिक पृष्ठभूमि को अत्यधिक सुदृढ़ एवं व्यापक स्वरूप प्रदान किया।

पंचम अध्याय—**'आधुनिक परिप्रेक्ष्य में भक्ति संगीत'** है। इस सोपान में कतिपय हिंदू धार्मिक परंपराओं में संगीत के स्वरूप को विवेचित करते हुए भक्ति संगीत युक्त रचनाओं को प्रस्तुत किया गया है। अध्याय के अंतिम भाग में प्रज्ञा संगीत के स्वरूप एवं गीतों की स्वरलिपियों की विवेचना की गई है।

हिंदू धार्मिक जीवन में नादोपासना के अनेक रूप लोकप्रिय एवं प्रचलित हैं। ईश्वरोपासना से संगीत का अभिन्न रिश्ता आदिकाल से ही रहा है, परंतु साधारण जीवन में संस्कृति के अनुशासनों, संस्कारों में भी संगीत के विविध आयामों का प्रचलन एवं परंपराएँ लोक जीवन में अद्यतन विद्यमान हैं।

पारंपरिक आध्यात्मिक संगीत, जिसे उत्तर में कीर्तन व दक्षिण में संकीर्तन, महाराष्ट्र में प्रार्थना गान कहकर पुकारते हैं—भक्ति संगीत के अद्वितीय रूप को प्रकट करते हैं। सांस्कृतिक परंपराओं में पर्व, त्योहार, जयंतियाँ, जन्मदिन, विवाह, विभिन्न संस्कार, धार्मिक आयोजन आदि में भी भक्ति संगीत का व्यापक स्वरूप प्रकट होता है।

भक्ति संगीत के सामयिक व प्रेरक आदर्श को परमपूज्य गुरुदेव आचार्य श्रीराम शर्मा जी ने प्रज्ञा संगीत के रूप में प्रस्तुत कर आधुनिक युग को भारतीय संगीत का एक नया समीचीन आयाम प्रदान किया है। प्रज्ञा संगीत में समाहित लोकरंजन व लोक-मंगल की अवधारणा भक्ति संगीत के आध्यात्मिक, सांस्कृतिक एवं लौकिक संगीत के सभी प्रेरक पहलुओं को स्वयं में समाहित किए हुए है। प्रज्ञा संगीत के स्वरूप, उद्देश्य एवं विशेषताओं का शोधार्थी द्वारा इस अध्याय में विस्तृत विवेचन किया गया है।

इसके साथ ही प्रज्ञागीतों की स्वरलिपियों को प्रस्तुत कर इसकी सुगमता और महत्ता को व्यावहारिक स्तर पर सामने लाने का उल्लेखनीय कार्य भी किया है।

पूज्य गुरुदेव द्वारा स्थापित अखिल विश्व गायत्री परिवार के प्रत्येक क्रियाकलापों-आयोजनों में प्रज्ञा संगीत की स्वरलहरियाँ संयुक्त रहती हैं और करोड़ों गायत्री परिजनों के अंत:करण की प्रेरणा और प्रार्थनाओं की पुकार इन्हीं प्रज्ञागीतों के स्वरों में गुंजायमान देखी जा सकती है। भक्ति संगीत के युगानुकूल आदर्श के रूप में यह प्रज्ञा संगीत एक अद्वितीय उदाहरण बनकर प्रकट हुआ है।

अध्ययन का अंतिम सोपान—'**उपसंहार**' है। इसमें सभी अध्यायों का सार-संक्षेप प्रस्तुत करते हुए अध्ययन के महत्त्व, उद्देश्य, प्रासंगिकता और उपयोगिता को विवेचित किया गया है। भक्ति संगीत के ऐतिहासिक स्वरूप, व्यापक आयाम, सांस्कृतिक और आध्यात्मिक महत्ता को सामने लाने का यह प्रयास सराहनीय है।

अध्येताओं, जिज्ञासुओं और शोधार्थियों के ज्ञानवर्द्धन के साथ-साथ यह शोध प्रज्ञा संगीत के रूप में भक्ति संगीत के प्रेरक एवं उपादेयी आयामों को भी सामने लाता है। इन विशिष्टताओं के आधार पर निश्चित रूप से यह माना जा सकता है कि शोधार्थी का यह प्रयास भक्ति संगीत की विरासत को जन-जन तक पहुँचाने के कार्य में मील का पत्थर सिद्ध होगा। ❑

वह बालक बचपन से ही अल्प बुद्धि था, सो हर कोई उसे वरदराज (बैलों का राजा) कहकर पुकारते थे। दु:खी होकर वह कुएँ के किनारे बैठा था कि उसकी दृष्टि उस पत्थर पर गई, जिसके सहारे महिलाएँ रस्सी से पानी खींच रही थीं।

घिस-घिसकर वह पत्थर चिकना हो गया था। तभी वहाँ खड़ी एक महिला उसका उपहास करते हुए बोली—"ऐ वरदराज! तुझसे अच्छा तो यह पत्थर है, जो किसी काम तो आता है।"

वरदराज को यह बात चुभ गई। उसने प्रण लिया कि वह निरंतर परिश्रम करके अपनी प्रतिभा विकसित करेगा और वह उसी दिन से गंभीर अध्ययन में जुट गया। उसके परिश्रम का सुपरिणाम यह निकला कि वह बड़ा होकर संस्कृत व्याकरण का उद्भट विद्वान बना और उसने 'लघु सिद्धांत कौमुदी' ग्रंथ की रचना की, जो आज भी संस्कृत व्याकरण का आधार माना जाता है। वही वरदराज, आगे चलकर विद्वान वरदराज कहलाया।

युगगीता – 304

कर्मप्रेरणा और कर्मसंग्रह के आधार

(श्रीमद्भगवद्गीता के मोक्ष संन्यास योग नामक अठारहवें अध्याय की अठारहवीं किस्त)

[विगत किस्त में श्रीमद्भगवद्गीता के अठारहवें अध्याय के सत्रहवें श्लोक पर चर्चा की गई थी। इस श्लोक में भगवान श्रीकृष्ण अर्जुन से कहते हैं कि जिसका अहंकृत भाव (मैं कर्त्ता हूँ—ऐसा भाव) नहीं है और जिसकी बुद्धि लिप्त नहीं होती—वह इन प्राणियों को मारकर भी न मारता है और न कर्मफल में बँधता है। इस सूत्र में भगवान अर्जुन को समझा रहे हैं कि कर्मफल का आधार, कर्म के परिणामों से बँधने का वास्तविक आधार एक ही है और वह है कर्त्तापन का भाव अर्थात मैं इस कर्म को कर रहा हूँ। जो इस कर्त्ताभाव से, अहंता भाव से रहित है—उसकी बुद्धि लिप्त नहीं होती अर्थात वह फिर कर्मफल से नहीं बँधता।

इससे पूर्व के श्लोक में भगवान कह ही चुके हैं कि अज्ञानी व्यक्तियों को, जिनकी बुद्धि एवं चित्त अभी शुद्ध नहीं हो पाए हैं। ऐसे दुर्मतियों को ही अहंता का भाव होता है, परंतु विवेकी व्यक्ति को यह भाव सदा रहता है कि करने वाला मैं नहीं हूँ। श्रीभगवान कहते हैं कि ऐसे व्यक्ति की बुद्धि निर्लिप्त या निरासक्त बनी रहती है। ऐसा व्यक्ति लोगों का हनन करते हुए भी हनन नहीं करता अर्थात राग-द्वेष से सिक्त विचारों से नहीं बँधता। ज्ञानी पुरुष के चित्त में सृष्टि के प्रति मिथ्या भाव पैदा होने के कारण, यथार्थ दृष्टि प्राप्त होने के कारण राग-द्वेष आदि विकार जन्म नहीं लेते। भगवान श्रीकृष्ण, अर्जुन से कहते हैं कि जिसमें ये तीनों गुण होते हैं, अर्थात अहंता भाव का अभाव, निर्लिप्त बुद्धि एवं राग-द्वेष के विकारों से युक्त व्यक्तित्व—वह न तो किसी के मारने का कारण बनता है और न ही किसी बंधन से बँधता है; क्योंकि कर्मफल से बँधने का जो कारण है—उस कारण का उसके चित्त में अभाव हो चुका है।]

इसके बाद श्रीभगवान कहते हैं कि—

ज्ञानं ज्ञेयं परिज्ञाता, त्रिविधा कर्मचोदना।
करणं कर्म कर्तेति, त्रिविधः कर्मसङ्ग्रहः ॥18॥

शब्दविग्रह—ज्ञानम्, ज्ञेयम्, परिज्ञाता, त्रिविधा, कर्मचोदना, करणम्, कर्म, कर्ता, इति, त्रिविधः, कर्मसङ्ग्रहः ॥ 18 ॥

शब्दार्थ—ज्ञाता (**परिज्ञाता**), ज्ञान और (**ज्ञानम्**), ज्ञेय (**ज्ञेयम्**), यह तीन प्रकार की (**त्रिविधा**), कर्म-प्रेरणा (है) (और) (**कर्मचोदना**), कर्त्ता (**कर्ता**), करण (तथा) (**करणम्**), क्रिया (**कर्म**), इति (**यह**), तीन प्रकार का (**त्रिविधः**), कर्मसंग्रह है। (**कर्मसङ्ग्रहः**)।

अर्थात ज्ञान, ज्ञेय और परिज्ञाता—इन तीनों से कर्मप्रेरणा होती है एवं करण, कर्म तथा कर्त्ता—इन तीनों से कर्मसंग्रह होता है। ये सूत्र विगत सूत्र का अंग समझा जाना चाहिए। इससे पिछले श्लोक में भगवान श्रीकृष्ण ने अर्जुन से कहा था कि तीन तरह के लक्षणों वाले व्यक्तित्व कर्म से बँधते हैं तो प्रश्न उभरता है कि उनके व्यक्तित्व में ऐसा क्या कारण होता है कि वो कर्मफल से बँध जाते हैं तो उस प्रश्न का उत्तर भगवान, इस श्लोक में देते हैं।

वे कहते हैं कि जब तक मनुष्य के भीतर अहंकार और लिप्तता रहती है तब तक ज्ञाता, ज्ञान और ज्ञेय—इन तीनों के कारण कर्म को करने की प्रेरणा होती है अर्थात कर्म करने की प्रवृत्ति होती है। कर्मप्रेरणा होने से कर्त्ता, करण और कर्म—इन तीनों के कारण शुभ और अशुभ, पुण्य एवं पाप जैसे कर्मों का संग्रह होता चलता है। यदि कर्मसंग्रह न हो तो कर्मबंधन नहीं जन्म लेता।

इसी अध्याय में पूर्व में भगवान ने कर्मों को करने के पाँच हेतु गिनाते हुए कहा था कि अधिष्ठान, कर्त्ता, करण, चेष्टा और दैव—इन पाँचों में मूल हेतु है कर्त्ता। ये कर्त्तापन दो चरणों में घटित होता है, पहला है—कर्म को करने की प्रेरणा।

कर्म को करने की प्रेरणा तीन कारणों से होती है, पहला है—'ज्ञान'। यदि ये ज्ञान हो कि भूख लगने पर भोजन किया जाए, प्यास लगने पर पानी पिया जाए तभी वो खाना खाने और पानी पीने के लिए प्रवृत्त होगा।

ज्ञान जिस विषय का होता है वह 'ज्ञेय' कहलाता है और ज्ञान जिसको होता है, उसे 'ज्ञाता' या 'परिज्ञाता' कह करके पुकारते हैं। 'परिज्ञाता' शब्द का अर्थ है, **परितः ज्ञाता**—जो सब तरह की क्रियाओं की स्फुरणा को जानने वाला है।

ये तीनों—ज्ञाता, ज्ञान और ज्ञेय मिलकर कर्म को करने की प्रवृत्ति का हेतु बनते हैं और जहाँ ये तीनों हुए, वहाँ स्वतः ही कर्मसंग्रह की पृष्ठभूमि तैयार होती है। कर्मसंग्रह के तीन कारण होते हैं—करण, कर्म तथा कर्त्ता। कर्म की ओर प्रवृत्त होने पर कर्म होता है और वो कर्मसंग्रह का कारण बनता है।

कर्मसंग्रह के तीन प्रमुख आधार होते हैं, भगवान बताते हैं कि पहला आधार है—करण। जिन साधनों से कर्त्ता कर्म करता है, उन क्रिया करने के साधनों को 'करण' कहते हैं। इनको करने हेतु जो चेष्टाएँ संपन्न हुईं वो कर्म कहलाती हैं और करण से संबंध जोड़ने वाला 'कर्त्ता' कहलाता है। इन सारी बातों को अर्जुन से कहने के पीछे, भगवान का उद्देश्य एक ही है कि वो अर्जुन को यह स्पष्ट कर सकें कि कर्मबंधन का कारण किस तरह से बनता है। जिसे ये ज्ञान हो जाता है, वो कर्म से युक्त होने की राह स्वयं पकड़ लेता है। (क्रमशः)

अखण्ड ज्योति पत्रिका हेतु बैंक खातों का विवरण

जमा रसीद की प्रति एवं विवरण ई-मेल, पत्र द्वारा भेजें; अन्यथा राशि का समायोजन नहीं हो पाएगा।

Beneficiary –	Akhand Jyoti Sansthan	I.F.S. Code	Account No.
S.B.I.	Ghiya Mandi Mathura	SBIN0031010	51034880021
P.N.B.	Chowki Bagh Bahadur, Mathura	PUNB-0183800	1838002102224070
I.O.B.	Yug Nirman Tapobhoomi, Mathura	IOBA0001441	144102000000006

विदेशी धन बैंक में सीधे जमा न करें, ड्राफ्ट द्वारा भेजें।

विश्वविद्यालय परिसर से –243

संस्कारों के उत्सव का केंद्र बना विश्वविद्यालय

देव संस्कृति विश्वविद्यालय में हाल ही में कई विशिष्ट अतिथियों का आगमन हुआ, जिन्होंने न केवल विश्वविद्यालय के शैक्षणिक और सांस्कृतिक वातावरण का अनुभव किया, बल्कि यहाँ संचालित आध्यात्मिक एवं सामाजिक प्रयासों की प्रशंसा भी की। इसी क्रम में विगत दिनों भारत निर्वाचन आयोग के माननीय आयुक्त डॉ० विवेक जोशी जी का स्वागत विश्वविद्यालय के प्रतिकुलपति जी द्वारा किया गया।

डॉ० जोशी जी ने विश्वविद्यालय परिसर का भ्रमण किया और यहाँ की शिक्षा, संस्कृति तथा आध्यात्मिकता से जुड़ी गतिविधियों की विस्तारपूर्वक जानकारी प्राप्त की। इस दौरान पूज्य गुरुदेव के विचारों और विश्वविद्यालय की स्थापना के उद्देश्यों पर भी गहन संवाद हुआ।

डॉ० जोशी जी ने इस संगठनात्मक प्रयास की खुले मन से सराहना करते हुए ऐसे प्रयासों को राष्ट्र निर्माण के लिए प्रेरक एवं मार्गदर्शी बताया। उन्होंने कहा कि यह अभियान केवल शैक्षणिक प्रक्रिया नहीं, बल्कि जनजागरण, चरित्र निर्माण और युग निर्माण की दिशा में एक प्रभावशाली प्रकाशपुंज बन चुका है, जो राष्ट्र के उज्ज्वल भविष्य का मार्ग प्रशस्त करेगा।

विगत दिनों देव संस्कृति विश्वविद्यालय में श्री के0 नारायण राव जी का भी आगमन हुआ। श्री के0एन0आर0 ने मात्र 28 वर्ष की आयु में तीनों प्रमुख संस्थाओं—ICAI, ICSI, ICWAI—की सदस्यता हासिल कर ऑल इंडिया रैंक होल्डर के रूप में अपना नाम रोशन किया। उन्होंने टाटा स्टील, रासी ग्रुप, कोरमंडल फर्टिलाइज़र्स और जीएमआर ग्रुप जैसे प्रतिष्ठित संगठनों में नेतृत्वकारी भूमिकाएँ निभाई हैं।

उनकी प्रतिकुलपति जी से हुई भेंट में मूल्य-आधारित नेतृत्व, अधोसंरचना विकास और राष्ट्रसेवा पर विचारशील संवाद हुआ। श्री के0एन0आर0 ने दृढ़ निष्ठा, दूरदृष्टि और ईमानदारी से असाधारण उपलब्धियाँ अर्जित करने के अपने अनुभव साझा किए। भारत के उर्वरक ढाँचे के पुनर्गठन और दिल्ली अंतरराष्ट्रीय हवाई अड्डे को वैश्विक स्तर पर खरा उतारने में उनके योगदान को विशेष सराहना मिली। वर्तमान में वे विभिन्न प्रमुख संस्थानों के निदेशक हैं और विश्वविद्यालय उनके बहुमूल्य अनुभवों से समृद्ध होगा।

राजस्थान की राज्यमंत्री श्रीमती अनुसूया गोस्वामी ने भी विश्वविद्यालय का दौरा किया। उन्होंने विश्वविद्यालय के शैक्षिक, सांस्कृतिक और आध्यात्मिक वातावरण का प्रत्यक्ष अनुभव किया और प्रतिकुलपति जी से युवाओं के नैतिक उत्थान, नारी सशक्तीकरण तथा राष्ट्र की सांस्कृतिक चेतना के नवजागरण पर सारगर्भित चर्चा की। उन्होंने पूज्य गुरुदेव की दूरदृष्टि से प्रेरित विश्वविद्यालय के दृष्टिकोण और परिसर की जीवनशैली की सराहना करते हुए इसे समाज को नैतिक दिशा देने वाला अद्वितीय केंद्र बताया।

इसी क्रम में राजस्थान सरकार के शिक्षामंत्री माननीय श्री मदन दिलावर जी का भी विश्वविद्यालय

और शांतिकुंज परिसर में स्वागत हुआ। अपने प्रवास के दौरान उन्होंने विश्वविद्यालय की शैक्षणिक, शोधपरक एवं सांस्कृतिक गतिविधियों का अवलोकन किया।

उनके और प्रतिकुलपति जी के बीच भारतीय शिक्षा-प्रणाली में मूल्यनिष्ठ दृष्टिकोण, युवा नेतृत्व के विकास और संस्कृतिकेंद्रित राष्ट्रनिर्माण पर विचारोत्तेजक संवाद हुआ। मंत्री जी ने विश्वविद्यालय की कार्य-प्रणाली और सांस्कृतिक विरासत के अद्भुत समन्वय की प्रशंसा की तथा इसे राष्ट्रनिर्माण में महत्त्वपूर्ण बताया।

देव संस्कृति विश्वविद्यालय परिसर में अन्या सॉफ्टेक लिमिटेड के चेयरमैन एवं प्रबंध निदेशक श्री योगेश वर्मा जी का आगमन भी एक प्रेरणादायक क्षण था। उन्होंने विश्वविद्यालय के प्रतिकुलपति जी से तकनीक, आध्यात्मिकता और सांस्कृतिक मूल्यों के संरक्षण एवं प्रचार में सहयोग की संभावनाओं पर विचार किया।

श्री वर्मा जी ने पूज्य गुरुदेव की दूरदर्शी दृष्टि की सराहना करते हुए कहा—"विश्वविद्यालय प्राचीन भारतीय संस्कृति को आधुनिक शिक्षा और विज्ञान के साथ समन्वित करते हुए नई दिशा प्रदान कर रहा है।" उनका दौरा इस विश्वास को मजबूत करता है कि नैतिक मूल्य एवं आध्यात्मिक प्रेरणा से युक्त शिक्षा के माध्यम से राष्ट्रनिर्माण संभव है।

इसके अतिरिक्त देव संस्कृति विश्वविद्यालय की पूर्व छात्रा एवं स्वामी शंकरतिलक सरस्वती जी की निजी सचिव सुश्री शंकरी शक्तिनी चैतन्य का आगमन भी हुआ। वे वैदिक फाउंडेशन इंटरनेशनल से जुड़ी हैं और भारतीय संस्कृति के वैश्विक प्रचार-प्रसार में सक्रिय भूमिका निभा रही हैं।

उनके और प्रतिकुलपति जी के बीच शिक्षा, अध्यात्म और सांस्कृतिक पुनर्जागरण में सहयोग की संभावनाओं पर प्रेरणादायक संवाद हुआ। इन सभी अतिथियों के आगमन से देव संस्कृति विश्वविद्यालय एक विचारों, संस्कारों और चेतना के उत्सव का केंद्र बना।

यह संस्थान केवल शिक्षा का केंद्र नहीं, बल्कि युग परिवर्तन, सामाजिक जागरण और नैतिक पुनरुत्थान का प्रेरक स्रोत बनता जा रहा है। इन प्रेरणादायी संवादों और अनुभवों से देव संस्कृति विश्वविद्यालय के विद्यार्थियों और संपूर्ण समुदाय को नई ऊर्जा और दिशा प्राप्त होगी, जो भविष्य में राष्ट्र और विश्व के विकास में महत्त्वपूर्ण भूमिका निभाएगी।

पूज्य गुरुदेव का यह संदेश कि संघर्षमय समय में आत्मनिर्भरता ही वास्तविक स्वतंत्रता है; आज के भारत में और भी अधिक प्रासंगिक हो गया है। वर्तमान समय की वैश्विक चुनौतियों के बीच जब देश को स्वदेशी सोच, आत्मनिर्भरता और सांस्कृतिक चेतना की आवश्यकता है, तब देव संस्कृति विश्वविद्यालय, हरिद्वार ने दो महत्त्वपूर्ण पहलें करके राष्ट्रनिर्माण की दिशा में नई रोशनी बिखेरी है।

एक ओर विगत दिनों राष्ट्रीय स्वयंसेवक संघ एवं विश्वविद्यालय के संयुक्त तत्वावधान में अखिल भारतीय पूर्णकालिक एवं प्रशिक्षक स्वावलंबी भारत अभियान का भव्य शुभारंभ हुआ तो वहीं दूसरी ओर विश्व पर्यावरण दिवस के अवसर पर विश्वविद्यालय में गौ-आधारित पर्यावरणीय नवाचार इकाई की भी स्थापना की गई। स्वावलंबी भारत अभियान का शुभारंभ एक ऐतिहासिक घटना के रूप में दर्ज हुआ, जिसमें देश भर से आए प्रशिक्षकों, विश्वविद्यालय के विद्यार्थियों और समर्पित कार्यकर्त्ताओं ने भाग लिया।

इस पाँच दिवसीय आयोजन की शुरुआत विश्वविद्यालय के प्रतिकुलपति जी की गरिमामयी उपस्थिति में हुई। इस अवसर पर मंच पर वरिष्ठ संघ प्रचारक एवं अखिल भारतीय संघटक श्री कश्मीरी लाल जी, अखिल भारतीय सह-संयोजक श्री जितेंद्र गुप्ता जी, स्वर्णिम भारत वर्ष

फाउंडेशन के चेयरमैन श्री सतीश चावला जी तथा अखिल भारतीय विचार विभाग प्रमुख डॉ० राजीव कुमार जी जैसे विशिष्ट अतिथिगण उपस्थित थे।

अपने ओजस्वी संबोधन में प्रतिकुलपति जी ने युवाओं से आह्वान किया कि वे भारतीयता, स्वदेशी और आत्मनिर्भरता जैसे मूलभूत मूल्यों को आत्मसात् करते हुए राष्ट्रनिर्माण में सक्रिय योगदान दें।

उन्होंने इस अभियान को एक सामान्य आयोजन न मानकर आत्मनिर्भर भारत की संकल्पना को साकार करने की दिशा में एक सशक्त पहल बताया। इस आयोजन ने स्वदेशी के प्रति आस्था, स्वाभिमान और संकल्पशक्ति का परिचय देते हुए सभी प्रतिभागियों को एक नई ऊर्जा से भर दिया।

इस कार्यक्रम के कुछ ही दिनों बाद देव संस्कृति विश्वविद्यालय ने विश्व पर्यावरण दिवस के अवसर पर एक और अभूतपूर्व पहल की। राष्ट्रीय नवाचार प्रतिष्ठान के सहयोग से विश्वविद्यालय परिसर में गौ-आधारित पर्यावरणीय नवाचार इकाई की स्थापना की गई।

इस इकाई का उद्देश्य जैविक, गोबर आधारित एवं पर्यावरण के अनुकूल उत्पादों का निर्माण करना है। इसमें फूलों के गमले, दीपक, अगरबत्ती/संभरानी कप जैसे उत्पादों के निर्माण हेतु स्वदेशी मशीनें स्थापित की गई हैं, जो पूर्णत: देशी नवाचारों पर आधारित हैं। इनका प्रशिक्षण विश्वविद्यालय परिसर में ही आरंभ हो चुका है, जिससे न केवल छात्र, बल्कि आम जनमानस भी सतत आजीविका के साधनों और पर्यावरण के प्रति संवेदनशील तकनीकों से लाभान्वित हो सकेंगे।

इस नवाचार इकाई का उद्घाटन प्रतिकुलपति जी के कर-कमलों द्वारा हुआ। उन्होंने अपने संदेश में कहा कि अब समय आ गया है कि हम नवाचारों में दीर्घकालिक एवं सतत समाधान खोजें। पर्यावरण संरक्षण, स्वदेशी तकनीक और सतत विकास का सम्मिलन ही आज की सबसे बड़ी आवश्यकता है। उन्होंने राष्ट्रीय नवाचार प्रतिष्ठान के प्रयासों की सराहना करते हुए इस पहल को एक प्रेरणास्रोत बताया।

इस अवसर पर प्रतिष्ठान से डॉ0 महेश पटेल एवं परियोजना के नवप्रवर्तक श्री अरविंदभाई ने भी अपनी सहभागिता दर्ज कराई, गुरुदेव के श्रीचरणों में कृतज्ञता अर्पित की और अपने नवाचारों की प्रेरणाएँ साझा कीं। इन दोनों आयोजनों ने यह सिद्ध कर दिया कि देव संस्कृति विश्वविद्यालय केवल एक शैक्षणिक संस्थान नहीं, बल्कि विचार, प्रयोग और संवेदनशीलता का एक जीवंत केंद्र है। जहाँ एक ओर स्वावलंबी भारत अभियान राष्ट्र चेतना का स्वर बनकर उभरा, वहीं दूसरी ओर नवाचार इकाई ने पर्यावरणीय उत्तरदायित्व की भावना को मूर्तरूप दिया।

इस संसार में बुरा कोई मनुष्य नहीं; केवल परिस्थितियाँ और भावनाएँ ही बुरी हैं, जिन्हें बदला जा सकता है।

— परमपूज्य गुरुदेव

विश्वविद्यालय की यह दूरदृष्टि दरसाती है कि भारत का नवनिर्माण केवल तकनीकी विकास से नहीं, बल्कि सांस्कृतिक चेतना, स्वदेशी नवाचार और आत्मनिर्भरता से संभव है। जब हर युवा, हर नागरिक अपने कौशल, संसाधनों और आत्मबल के माध्यम से राष्ट्रनिर्माण में सहभागी बनेगा, तभी नवभारत का स्वप्न साकार होगा— एक ऐसा भारत, जो न केवल विकसित होगा, बल्कि अपने मूल्यों, संस्कृति और प्रकृति के प्रति सजग भी रहेगा। देव संस्कृति विश्वविद्यालय का यह प्रयत्न उस स्वर्णिम भारत की आहट है, जिसकी परिकल्पना पूज्य गुरुदेव ने वर्षों पूर्व की थी और आज वह विचार कार्यरूप में परिणत हो रहा है। ❑

परमवंदनीया माताजी की अमृतवाणी

साहस जुटाएँ संकल्प जगाएँ

परमवंदनीया माताजी के व्याख्यान गायत्री परिजनों के लिए एक अमूल्य धरोहर हैं। उनके वक्तव्यों में माँ की ममता भी है एवं गायत्री परिवार की संस्थापिका के नेतृत्व के स्वर भी उनमें सुनने को मिलते हैं। अपने एक ऐसे ही प्रस्तुत उद्‌बोधन में वंदनीया माताजी प्रत्येक गायत्री परिजन को ललकारते हुए कहती हैं कि उन्हें हिम्मत न हारकर अपने साहस को जुटाते हुए युगधर्म का निर्वहन करने के लिए आगे आने की आवश्यकता है।

वे याद दिलाती हैं कि परमपूज्य गुरुदेव ने गायत्री शक्तिपीठों को किस उद्‌देश्य से बनाया था। उनका उद्‌देश्य जनमानस को झकझोरना और सद्‌विचारों को प्रसारित करना था। उन उद्‌देश्यों से विपरीत जाने पर सभी अपने गुरु को दिए गए वचन के प्रति विश्वासघाती बनेंगे। परमवंदनीया माताजी पूज्य गुरुदेव का उदाहरण देती हैं कि कितने त्याग से उन्होंने गायत्री परिवार को स्थापित किया। आइए हृदंयगम करते हैं उनकी अमृतवाणी को.....।

हिम्मत न हार, युद्ध कर

गायत्री मंत्र हमारे साथ-साथ बोलें—

ॐ भूर्भुवः स्वः तत्सवितुर्वरेण्यं भर्गो देवस्य धीमहि धियो यो नःप्रचोदयात्।

बेटियो और हमारे प्रज्ञापुत्रो! अर्जुन को जब भगवान श्रीकृष्ण ने ललकारा और उन्होंने एक ऐसा बड़ा शब्द कह दिया कि अरे जनखा! तुझे जनानियों के तरीके से मेरे सामने गिड़गिड़ाते-मिनमिनाते हुए शरम नहीं आती है? तुझे धनुष लेकर के और बाण लेकर के खड़ा हो जाना चाहिए। जब कि मैं तेरे साथ हूँ, मैं तेरा सारथी बनने के लिए तैयार हूँ और तू यह कह रहा है, हिम्मत हार रहा है। इसमें हिम्मत हारने की क्या बात है?

खड़ा हो जा देखा जाएगा, जब लड़ाई में कूद पड़े हैं तो मरेंगे या मारेंगे, दो काम करेंगे। डरता क्यों है? जान से डर रहा है, हिम्मत हार रहा है, परिवारवालों की याद आ रही है? नहीं साहब! परिवारवालों की तो याद नहीं आ रही है। तो किसकी आ रही है? किसी की नहीं आ रही है, तो फिर तू एक काम कर, युद्ध लड़।

भीम को उसकी माँ ने बलिदान होने के लिए भेज दिया। एक गाँव था जहाँ एक राक्षस रहता था और वहाँ रोज बलि चढ़ती थी। क्या बलि चढ़ती थी? वह रोज एक इनसान को खाता था। एक दिन एक ब्राह्मण परिवार की बारी आई, उसमें एक बच्चा था। बच्चा एक नौजवान लड़का था, उसकी बारी आई तो भीम तिलमिला उठे।

भीम ने कहा कि यह ब्राह्मण बालक यदि इसके पेट में चला जाएगा तो इसकी माँ का तो कोई नहीं है। यह तो अपनी माँ का अकेला है, हम तो पाँच भाई हैं। अगर पाँच में से एक घट जाएगा तो चार रह जाएँगे। चार तो हमारी माँ के लिए हैं ही और वह कुंती के पास गए। कुंती के पास जब गए तो उन्होंने उनसे एक बात कही कि माँ आज राक्षस एक बलिदान चाहता है और वह एक को खाएगा। उसकी बारी आ गई है क्या तुम स्वेच्छा से कह सकती हो कि बेटा! मैं आज तुझे बलिदान होने के लिए देती हूँ ।

उसने कहा कि बेटा! मैं सपूतों की माँ हूँ, कपूतों की नहीं, मैं तुझे आज्ञा देती हूँ कि तू जा और उस राक्षस का मुकाबला कर, यदि हारता है तो तुझे वह राक्षस खा जाएगा और जीतता है तो तू विजेता है ही। क्योंकि उसके अंदर बल था, उसके अंदर साहस था, फिर उसे कौन राक्षस खा सकता है? कोई राक्षस नहीं खा सकता है। भीम उस राक्षस को मारकर घर आ गए और विजेता हो गए।

साहस और हिम्मत जुटाएँ

यह कथानक किसके ऊपर लागू हुआ? यह तो आप महाभारत की बात कह रही हैं, आप तो यह बताइए कि वर्तमान में हमें क्या करना चाहिए और हमको भीम कैसे बनना चाहिए? हमको किस तरीके से आगे आना चाहिए और किस तरीके से अर्जुन के तरीके से हम धनुष और बाण लेकर के आगे चलें, यह बात बताइए।

मैं वही बात आपसे निवेदन कर रही हूँ कि आप अपने अंदर हिम्मत और साहस जुटा लें। हिम्मत और साहस की कमी है और मुझे आपके अंदर कोई कमी नहीं दिखाई पड़ती। भावनाओं की कमी? नहीं भावनाओं की कमी नहीं है, यदि भावनाओं की कमी होती तो आप इतनी दूर से पैसा खरच करके क्यों आए होते?

भावनाओं की कमी नहीं है, श्रद्धा की भी कमी नहीं है। कमी है तो आपके आलस्य और प्रमाद की कमी है, इसकी वजह से आप आगे नहीं बढ़ पाते हैं ,आगे की पंक्ति में नहीं आ पाते हैं। नेताओं से तो हमें नफरत है कि जो नेता बनते हैं और नेतागीरी के सामने और कोई उनको दिखाई नहीं पड़ता। उससे अंधे हो जाते हैं तो हमें नागवार गुजरता है, लेकिन जो हिम्मतवाले लड़के हैं उनको छाती से लगाने का हमारा मन होता है कि हम इनको छाती से लगाएँ, कलेजे से लगाएँ, इनके हाथों को चूमें और इनके माथे को चूमें। इनके अंदर कितना बल है, कितना साहस है।

मठों का संकल्प

शक्तिपीठें कभी बनाई गई थीं, गुरुजी ने आप लोगों को संकल्प दिलवाया था। कल जो छत्तीसगढ़ वाले मेरे पास सब मिल करके आए तो मैं उनसे कह रही थी कि कभी समय था कि जिस तरीके से समर्थ गुरु रामदास ने मठ बनाए थे और मठ बनाने का उनका एक ही उद्देश्य था कि हमारे राष्ट्र के लिए एक कर्णधार पैदा हो। उन्होंने वहाँ सशक्त हनुमान मठ बनाए थे। इसी तरीके से गुरुजी का एक प्लान था और यह था कि हम शक्तिपीठ बनाएँ।

जो बेचारे यहाँ नहीं आ पाते हैं वे वहाँ से प्रेरणा पाएँ, वहाँ संस्कार मनाए जाएँ, संस्कार महोत्सव मनाए जाएँ, बाल संस्कारशाला चलाई जाएँ, लेकिन हो गया वह उलटा। जो बनाया तो बड़ी उम्मीदों से था, लोगों ने पैसा भी बहुत खरच किया। जनता ने बहुत पैसा खरच किया और उनके मनोबल की भी दाद देनी पड़ेगी, जिन्होंने कि शक्तिपीठ बनाने में संकल्प लिया, लेकिन एक बात कहने में मैं चुप नहीं हूँ कि उन्होंने एक व्यापार का, एक धंधे का रूप दे दिया। व्यापार नहीं चाहिए, जो चाहिए उसको कैसे आप भूल गए? जो आपके

गुरुजी बता करके गए हैं, उसे आप कैसे भूल गए? उससे कैसे भटक गए आप? आपने व्यापारिक केंद्र कैसे बना लिया उसको? जबकि आपसे तो यह कहा था कि यहाँ से विचार फैलने चाहिए।

शक्तिपीठों का उद्देश्य

यह सब देखकर बेटे, उनको बड़ा दुःख हुआ। उन्होंने अपने मन में पश्चात्ताप किया कि मैंने एक बहुत बड़ी भूल की। भूल यह की है कि मैंने शक्तिपीठ क्यों बनवाए? मैंने कहा कि क्यों साहब! आपने ही तो तिलक किए और रुपये दिए थे। उन्होंने कहा कि हमने तिलक किया और शक्तिपीठ बनाने के लिए इनको रुपये दिए, लेकिन यह भूल हो गई कि जिस उद्देश्य से हम चाहते थे वह नहीं हुआ। तो क्या किया उन्होंने?

उन्होंने यह किया कि स्वाध्याय मंडल चालू किए। उन्होंने कहा कि अब हम चलती-फिरती शक्तिपीठ बनाएँगे। यह तो जड़ होते जा रहे हैं, यह तो व्यापारी होते जा रहे हैं, इनका तो दिमाग उसमें चलता हुआ चला जा रहा है। कोई डिग्री कॉलेज खोल रहा है, कोई इंटर कॉलेज खोल रहा है, कोई हाईस्कूल खोल रहा है, तो कोई कुछ करा रहा है, तो कोई कुछ व्यापारिक केंद्र चला रहा है। सब उलझते जा रहे हैं।

जबकि उद्देश्य यह था कि जनता का मनोबल ऊँचा उठाएँ और हर बच्चे में संस्कार और प्रेरणा उभरती हुई चली जाएँ, ताकि आने वाली पीढ़ी जो हमारे राष्ट्र की कर्णधार होने वाली है, वह कायर पीढ़ी न कहलाए, बुझदिल पीढ़ी न कहलाए। यह हमारा उद्देश्य था। संस्कार देने का उद्देश्य था कि जो बच्चे माँ-बाप को नमन करना नहीं जानते कि प्रणाम किसे कहते हैं, वह नमन कराने से लेकर के आध्यात्मिक मार्ग पर चलाने तक के लिए शक्तिपीठ बनाए गए थे। उनको बहुत दुःख हुआ और मुझे भी बहुत दुःख हुआ। मुझे अपने मन में यह दुःख हुआ कि यह क्या हुआ?

व्यापार नहीं, विचार फैलाएँ

चलो अब बात पुरानी हो गई सो हो गई। आपने पिछले दिनों बहुत डाँट-फटकार खाई है। अब मैं डाँट-फटकार तो नहीं लगाऊँगी, पर बात है तो है। वह तो कहनी ही पड़ेगी। मैंने यह बात आपके कानों में इसलिए डाल दी कि शक्तिपीठें व्यापार का, धंधे का केंद्र नहीं हैं। हमारा कोई भी शक्तिपीठ धंधे के लिए नहीं है। साहित्य हमारे पास है, स्टीकर हमारे पास है, सब कुछ हमारे पास है। और जहाँ के भी शक्तिपीठ को आप देखिए वहाँ व्यापार लगा रखा है। सब जगह व्यापार लगा रखा है।

शक्तिपीठ वालों ने कहा कि हमारे हाथ में यह अच्छा मिशन लग गया, गुरुजी का एक नाम अच्छा हाथ लग गया है कि गुरुजी के नाम पर चाहे जो करो, माँगो, गुरुजी के नाम पर साहित्य, गुरुजी के नाम पर चाहे जो काम करो। एक जगह नहीं मैं हजारों गिना सकती हूँ। यह क्या बात हो गई? भाई! यह क्या हो गया? चलो उसमें तो गुरुजी का नाम है मान लिया, लेकिन उसमें क्या है जो तुमने धंधा बना रखा है। धंधा नहीं बनाना चाहिए एक बात।

दूसरी बात यह कि जो आपको जन-जन तक जाना था, गुरुजी ने यह कहा था कि आप संकल्प ले रहे हैं तो आप जन-जन तक जाना, प्रचार-प्रसार करना, हर घर में जाना, महोत्सव मनाना, आप जन्मदिन मनाना, यज्ञोपवीत संस्कार मनाना, अन्य संस्कारों को आप मनाना और घर-घर आप जाना, उस बात को आप गए भूल। नहीं साहब! अब फिर से पाठ पढ़िए, अब उसको तो भूल जाइए कि पीछे आपने क्या किया था और कैसे चले थे और क्या हुआ था। अब आगे चलिए, अब आगे का मार्ग बताते हैं अपेक्षा इसके कि हम पीछे की नाराजगी आपसे कहते फिरें, जिससे कि आपके मन में भी दुःख हो और हमारे मन में भी दुःख हो, पर चलाने

वाले की श्रेष्ठता इसमें है कि वह आगे का मार्ग बतावे।

आगे क्या करना है ?

अब आगे के मार्ग की बात आ रही है तो आपको करना क्या चाहिए ? आपको यही करना चाहिए, जो मैंने अभी निवेदन किया था कि संस्कारों को पुनर्जीवित कीजिए, संस्कार महोत्सव मनाइए। यहाँ से जो कार्यक्रम आपको दिए जा रहे हैं, अभी तो हमने गिनी-चुनी जगह पर दिया है, लेकिन सन् 2000 तक हम देंगे-ही-देंगे, तुम चाहे जितनी करना-कौन मना करता है। पर सब अभी कर लोगे, यह क्या जरूरी है ? जहाँ हमने दिए हैं, उन्हीं को सफल बनाने के लिए आपस में मिल करके, गुथ करके काम कीजिए न।

नहीं साहब! हमारा तो अलग ढपली-अलग राग होगा। हम तो इसके विरोधी, वह इसका विरोधी, सब विरोधी, बहुतों का विरोधी। यह काहे का विरोध है, जरा बताना मुझे। केवल एक है, जिसका नाम है अहंकार। अहंकार जब व्यक्ति को आ जाता है, तो चाहे वह मैनेजिंग ट्रस्टी हो या ट्रस्टी हो, चाहे बिना ट्रस्टी हो, बस उसके ऊपर अहंकार का भूत सवार हो जाता है और दूसरा हो जाता है—नेतागीरी का। नेतागीरी गा—गाकर वह फूलकर लट्टू हो जाता है और जब कहीं कोई माला और पहना दे तो जाने वह कौन बादशाह हो जाता है।

कल मैंने सब लड़कों को हँसा दिया। हमारे यहाँ वृंदावन में रथ का मेला होता है। पहले कभी मैं एक बार देखने गई तो मैंने क्या देखा कि जो अनपढ़ थे, जो पिछड़े थे जिनको यह ज्ञान नहीं था कि व्यक्तित्व जो बनता है, वह अंदर से बनता है। व्यक्तित्व न तो पहनावे से बनता है कि बढ़िया चमचमाते हुए, भकभकाते हुए कपड़े पहन रहे हैं। मैला-कुचैला तो नहीं होना चाहिए, पर ऐसे बन ठन कर डोल रहे हैं, जैसे कि दूलहा ही फिर रहा हो, अभी इसी का विवाह होने वाला है। यह जो शानोशौकत है, यह जो दिखावा है, यह गलत है। इससे व्यक्तित्व नहीं बनता।

वृंदावन में क्या देखा ?

अभी मैंने एक बात कही कि वृंदावन में मैंने क्या देखा है ? एक तो यह कि लोग फूलमाला लटकाए आवें और एक पान खा लें और फिर क्या करें ? कभी तो ओंठो को देखें कि अभी वे लाल हुए कि नहीं हुए ? हमारी जो यह जीभ है और हमने

हितं मनोभिः सुखमत्ययं च शरीरमव्याधिमकुण्ठबुद्धिः।
प्रसन्नवाक्यं रितः सुखाय सदा स्मरेन्मङ्गलमङ्गलानाः॥

—स्कंदपुराण

अर्थात जिससे मन को हित, चिरस्थायी सुख, शरीर को आरोग्य और बुद्धि को कुशाग्रता प्राप्त हो, तथा जिसके वचन प्रसन्नता फैलाएँ—ऐसे मंगलों में भी जो सर्वोच्च मंगल है, उसका सदा स्मरण करें।

जो पान खाया है इससे हमारी जीभ लाल हुई कि नहीं हुई। वह निकाल-निकालकर देखें। मुझे बड़ी हँसी आई और मैंने एक नहीं, हजारों की तादाद में देखा। मैंने कहा कि देखो इनको ऐसा मालूम पड़ रहा है कि एक फूलमाला पहन ली और पान खा लिया है तो जाने हम कौन साहबजादे हो गए।

इनमें यह भी अक्ल नहीं है कि कमीज के बटन तो ठीक से लगा लें, वह भी खुले हुए हैं। आस्तीन है सो आस्तीन लटक रही हैं। कुछ ऐसे ही सब तरह के लोग फिर रहे हैं और माला लटकाने

का शौक आ गया तब तो मटक-मटककर चल रहे हैं। देखो कैसा भगत आ गया है। ऐसे ही नेताओं की हालत है। नेता में भी बिलकुल यही होता है। आप देखिए जब तक वह गद्दी पर नहीं बैठा है, तब तक तो सर रगड़ने वालों में सम्मिलित रहता है और जहाँ वह बना नेता, फिर देखो वह नेता कैसे अँगूठा दिखाता है ।

गुरुदेव की स्वयंसेवक वृत्ति

अध्यात्म पर भी यही बात लागू होती है। अध्यात्म में जो नेता बनेगा, वह जरूर गिरेगा। एक-न-एक दिन निश्चित वह गिरने वाला ही है; क्योंकि उसके अंदर में नेतागीरी आ गई न। उसके अंदर में एक स्वयंसेवक की वृत्ति नहीं आई। गुरुजी के अंदर स्वयंसेवक की वृत्ति थी।

कभी भी उनके अंदर कोई अहंकार नाम की कोई चीज नहीं थी। बड़े-से-बड़ा व्यक्ति आ जाए और छोटे-से-छोटा आ जाए, उनके लिए सभी समान थे। यह बात अलग है कि किसी को समय ज्यादा दे दिया, जो उनके सिद्धांतों से मेल खाता था, उसको जरा ज्यादा देर तक बैठा लेते थे और जिससे नहीं मिल पाया, उसे जरा जल्दी विदा कर दिया, पर उनके लिए सभी समान थे; चाहे वह गरीब हो, चाहे अमीर हो। उन्हें कभी गरीब-अमीर से कोई लेना-देना नहीं था, उन्हें तो उनकी कष्ट-कठिनाइयों की लिस्ट से लेना-देना था।

बहुत सारे ऐसे लड़के हैं, जिनके पास पैसा नहीं है, पर वह रात और दिन हमारे इशारे पर चलते हैं तो उनको क्या कहेंगे ? उनको छोटा कहेंगे ? नहीं, उनको छोटा नहीं कहेंगे, हम आपसे बड़ा कहेंगे, क्योंकि आपने तो पैसा ही दिया है। आपने शरीर कहाँ लगाया ? आपने मनोयोग कहाँ लगाया ? आपकी श्रद्धा कहाँ चली गई ? आपने समय कहाँ निकाला ? वह तो अपने बीबी-बच्चों को छोड़ करके भी आया है, अपना समय भी लगाता है और जो कुछ भी होता है सो भी योगदान देता है। अतः वह बड़ा हुआ कि नहीं हुआ ? बेटे, हमारी निगाह में वह बड़ा हुआ।

कमाऊ पूत प्यारा होता है। कमाऊ पूत का मतलब यह है कि वह सारे घर को सँभालता है, माँ-बाप को सँभालता है, भाई-बहन को सँभालता है, इसलिए वह कमाऊ पूत कहा जाता है। इसलिए माँ भी ध्यान देती है, पिता भी ध्यान देता है। आप सब हमारे कमाऊ पूत हैं। हमें बहुत प्यारे लगते हैं। बेटे, आप प्राणों से भी प्यारे लगते हैं, लेकिन जब कभी भी कोई उलटी चाल चलते हैं तो बहुत बुरा लगता है।

उलटी चाल मत चलिए, लटके मुँह मत देखिए, किसी से नफरत मत करिए, किसी की ओर घृणा से मत देखिए। उसके अंदर कोई कमियाँ हैं तो उन कमियों को हटाइए। यदि नहीं हटती हैं तो फिर उससे हाथ जोड़ लीजिए, यह भी तरीका है। हमारे तो एक-दो लड़के यहाँ से चले गए। हमने सँभालने की कोशिश की कि किसी तरीके से इनको सँभाला जाए।

इनकी त्रुटियों पर परदा डाला जाए, प्यार से, हर प्रकार के हर तरीके से जब देखा कि अब हार मान गए कि यह जो अंदर के कुसंस्कार हैं, यह जाएँगे नहीं, हटेंगे नहीं तो फिर हमने कहा—बाबा! नमस्कार है। आशीर्वाद चाहे जितना ले जाए लखपति बनेगा तू, हमसे लिखवा ले।

जा तुझे लखपति न बना दें तो चाहे जो कहना, तू लखपति बन जाएगा, पर मिशन से मत टकरा, मिशन का दोहन नहीं करने देंगे। हम यह नहीं करने देंगे कि मिशन के नाम पर आप कहीं जाएँ और गुरुजी के नाम पर पैसा माँगें। वैसे अब आपके अंदर श्रद्धा है ही नहीं, मिशन के लिए थोड़ी जा रहे हो, आप तो अपनी जेब भरने के लिए जा रहे हो।

गुरुदेव को धोखा न दें

अपनी जेब भरने के लिए जाओ, निकलो फिर तुम कहीं भी जाओ, खूब कमाना। नीति से कमाना, अनीति से कमाना, कैसे भी कमाना, तुम लखपति बन जाओगे, कोरे कागज पर लिखकर ले जाओ, हम लिखकर देंगे। बन जाएगा? हाँ बन जाएगा, पर यह मानकर चल कि तू अपनी जीवात्मा के आगे बिलकुल मर जाएगा। जो चेहरे का ओज आज तक चमकता था, वह अब नहीं चमकेगा, जिंदगी भर नहीं चमकेगा।

किसी भी तरीके से वह नहीं चमक सकता; क्योंकि तूने उस सत्ता को धोखा दिया है, जिसने कि अपना सारा जीवन तिल-तिल करके गँवा दिया। उसको धोखा देगा तू? उसको धोखा दे करके कहाँ जाएगा तू? लखपति बन जा, चाहे तू करोड़पति बन जा, पर उसके आगे तू गिर गया, हमारे आगे गिर गया, जीवात्मा की दृष्टि से गिर गया, तू अपनी जीवात्मा के सामने भी गिर गया।

मैंने लड़कों से यह कहा कि जो मेरे यहाँ से एकाध विदा हुए हैं, जो इधर-उधर कुछ बातें भी कर रहे हैं तो करने दो। इससे हमारे मिशन पर क्या फरक पड़ता है, कुछ नहीं। हमारे कार्यकर्त्ता तो बड़े निष्ठावान हैं, इनके ऊपर क्या असर पड़ता है। कोई होगा तो एक होगा, तो हो जाएगा, हो जाने दो। जो मिशन को अच्छी तरीके से जानते हैं कि यह मिशन तपश्चर्या से बनाया गया है।

गुरुजी ने कितना तप किया है, कितना साधन जुटाया है, आपको मालूम नहीं है कि रात-दिन वे मिशन के लिए जुटे रहते हैं। एक दिन ऐसा हुआ कि मैं ऊपर गई। मैंने कहा आपकी आँखें कैसे लाल हो रही हैं? आपकी आँख बहुत लाल हो रही हैं। उन्होंने कहा कि आज मैंने इतना लिखा है कि आने वाला समय इसको समझेगा। मैंने कहा कि आने वाला समय तो समझेगा, लेकिन आपने तो बहुत लिखकर आँखें लाल कर लीं। उन्होंने कहा कि यह मेरा लिखना अंतिम लिखना है, यह शब्द उन्होंने कहे।

जीवन भर गले गुरुदेव

सारी जिंदगी इस समाज के लिए और राष्ट्र के लिए वह गलते ही चले गए, अपने को गँवाते हुए चले गए। न कभी अपना स्वास्थ्य देखा, न उन्होंने परिवार देखा कभी, जिम्मेदारियाँ तो सब निभाईं, इसमें तो दो राय ही नहीं है, लेकिन आमतौर से जिस तरीके से आप लोग चिपके रहते हैं, ऐसे वह कभी भी चिपके नहीं। उनको फर्ज-कर्त्तव्य तो याद रहा, जिम्मेदारियाँ भी याद रहीं, पर अध्यात्म मार्ग पर जो चल पड़े तो उसमें रोड़ा अटकाने की किसी की हिम्मत नहीं पड़ी और न ही किसी के सामने वे कभी झुके।

क्यों नहीं झुके? गलती नहीं तो झुकते क्यों और वैसे इतने नम्र भी थे कि कोई व्यक्ति कभी आ जाए तो उठ करके कुरसी लगानी पड़े तो कुरसी लगाते थे। यह नहीं कि आ रे! तू रख जाना, उनके अंदर ऐसी भावना नहीं थी। उठ करके कुरसी लगाते थे, उठ करके बैठालते थे, किसी को पानी पिलाना होता तो स्वयं पानी पिलाते थे। उनके अंदर बहुत विशेषता थी। उनका हृदय इतना उदार था कि किसी माँ का हृदय क्या उदार होगा?

बेटे, चलते समय की बात कह रही हूँ कि वसंत पर्व से पहले मैं समझ गई थी। ऐसा था कि मेरी अलमारी में उनका फोटो रखा था और मेरा फोटो उनकी अलमारी में रखा था। मैंने कहा कि साहब! मैंने तो रखा है तो रखा है, पर आपने यह क्यों रखा है? उन्होंने कहा कि जब तुम्हारी अलमारी में मेरा हो सकता है तो मेरी अलमारी में तुम्हारा क्यों नहीं हो सकता है? मैं दिन में दो-चार बार देख लेता हूँ, यह उनके शब्द थे।

वसंत पर्व से पहले एक कोई व्यक्ति आए, दिल्ली के थे। बड़ा मुँह लगा था। वह बोला कि गुरुजी! आप मुझे कुछ दे दो। उन्होंने कहा कि बेटा,

मेरे पास तो कुछ है नहीं। नहीं गुरुजी! आपके पास जरूर होगा। उन्होंने अलमारी खोल करके एक डिब्बी में कुछ रुपये थे दो-पाँच-दस-बीस होंगे, ज्यादा नहीं थे। उनके पास रहते नहीं थे। बेटा यह दस-बीस रुपये पड़े हैं, उसमें सेफ्टी रेजर पड़ा था और मेरा फोटो रखा था, ज्यों-की-त्यों जो चीज उनके पास रखी थी, उन्होंने उसको दे दी और वह सर पर रख करके नाचता हुआ चला गया। मैं अपने मन में बिलकुल समझ गई कि अब यह शरीर बिछड़ने वाला है। जिंदगी में कभी उन्होंने आज तक यह नहीं किया था, आज फोटो उठाकर कैसे दे दिया किसी को? मैं चुप हो गई, मुझे कुछ भावुकता तो आई जिस तरीके से अब आ रही है, पर मैं चुप हो गई।

वह उदार भी बहुत थे। यही प्रसंग नहीं है, हजारों प्रसंग उनके ऐसे हैं, जिसमें कि उनकी उदारता की कोई सीमा नहीं है। हर परिजन को वे ऊँचा उठाते हुए चले गए, उनके दुःख और पीड़ा का निवारण करते हुए चले गए चाहे अपने ऊपर कितना भी उन्होंने वजन लिया हो, लेकिन उनको किसी-न-किसी कष्ट में से अवश्य निकाला। जिस किसी का कोई ऐसा विपरीत भाग्य हो गया हो, कोई भाग्य ही साथ न दे तब बेटा कोई भगवान तो हैं नहीं कि हम निकाल दें।

भगवान कहाँ है? भगवान तो ऐसी सत्ता है, जो देखी नहीं जा सकती, लेकिन भगवान के जो पदचिह्नों पर चलता है, भगवान के जो सिद्धांतों पर चलता है, वास्तव में वह अवतारी होता है। गुरुजी अवतारी थे। नहीं साहब! अवतारी नहीं थे। आप कैसे भगवान कह रही हैं? बेटा यह बताओ कि बुद्ध को हम भगवान कहते हैं, कृष्ण को हम भगवान कहते हैं, राम को हम भगवान कहते हैं, तो फिर गुरुजी को भगवान क्यों नहीं कह सकते? कृष्ण ने इतना काम किया था, राम ने इतना काम किया था, मुझे कहने दीजिए। राम ने केवल लंका को जलाया था, राक्षसों का विनाश किया था।

हाँ! अपने आप में बहुत बड़ा काम था, लेकिन बेटा गुरुजी का उससे भी ज्यादा काम है। आज जो भी राक्षसी प्रवृत्ति है, उसको हटाने के लिए उन्होंने जी-तोड़ श्रम किया है। यहाँ तक कि लोगों के प्रहार भी सहे, आलोचना भी सही। उन्होंने 'स्त्रियों का गायत्री अधिकार' नामक एक पुस्तक लिखी थी, तो मथुरा में इस कदर विद्रोह हो गया कि सनातनी तो अपनी तरह से विरोध करें और आर्य समाजी अपने तरीके से करें, पर करें वह दोनों।

यहाँ तक नौबत आ गई कि सन् 1958 के यज्ञ में ऐसा मालूम पड़ता था कि या तो बच्चों का अपहरण होगा अथवा यहाँ कोई दुर्घटना घटेगी। जैसा कि अभी आप का शपथ समारोह हुआ तो मुझे मालूम है कि वह पत्र किसने डाला। मुझे यह भी मालूम है कि किसने वह परचे चिपकाए। वह सब मुझसे छिप नहीं सकता है।

[क्रमशः अगले अंक में समापन]

ईशा वास्यमिदं सर्वं यत्किञ्च जगत्यां जगत्।
तेन त्यक्तेन भुञ्जीथा मा गृधः कस्यस्विद्धनम्॥

—ईशावास्योपनिषद्

अर्थात् इस संसार में जो कुछ भी चलता-फिरता है, वह सब ईश्वर से आच्छादित है। त्याग की भावना से उसका उपभोग करो और किसी के धन की लालसा मत करो।

साधना शताब्दी—विशिष्ट लेखमाला

राजनीति की नीति

'राजनीति की नीति' बदले हुए युग में बदल जाएगी। नवयुग की नई आवश्यकता भी यही है। स्वाधीनता-संघर्ष के समय राजनीति के मूल्य-मानक एवं मानदंड—त्याग, सेवा, देशप्रेम पर केंद्रित थे। आपस में मतभेद होते हुए भी मनभेद न था। अलग-अलग दल होते हुए भी दलीय दलदल और क्लेश का कीचड़ न था। उनमें परस्पर विरोध था, पर वैमनस्य नहीं। स्वाधीनता के बाद भी यह स्थिति कुछ समय तक बनी रही। स्वस्थ-आलोचना सभी को स्वीकार्य थी। कमियाँ—कमजोरियाँ उस समय भी थीं, पर कोई भी इन्हें देशप्रेम पर हावी न होने देता था। सत्ता किसी भी तरह से सेवा पर हावी न होने पाती थी। राजनीति के कार्यकर्त्ता व नेता सम्मान के पात्र थे, उन्हें सम्मानित दृष्टि से देखा जाता था। कहीं किसी के लिए व्यक्तिगत सुरक्षा के सरंजाम स्वीकार न थे। इनकी आवश्यकता भी न थी। वाद थे, कभी-कभी विवाद भी होते थे, पर इनमें कटुता की कड़वाहट कभी नहीं घुलने पाती थी।

न जाने, कब, कैसे, क्या हुआ? पीढ़ी बदली तो परंपराएँ भी बदल गईं। बाल गंगाधर तिलक, महात्मा गांधी, पंडित नेहरू, सरदार पटेल, सुभाषचंद्र बोस की बातें जाने भी दें, अब तो कहीं सामान्य सत्याग्रही-जनों की छवि भी नहीं दिखाई देती। बड़प्पन अब सद्गुणों से नहीं, संपदा से पहचाना जाता है। केवल नदियाँ ही प्रदूषित नहीं हुई हैं, राजनीति भी प्रदूषित हो चली है। बात किसी व्यक्ति या किसी एक दल की नहीं है, बयार में ही विष घुलने लगा है। अब ऐसा लगता है कि सत्ता, सम्मान, अधिकार, आधिपत्य प्रिय हो चला है; सेवा व सत्कार्य प्रिय नहीं रहे। चाहे किसी को कितना भी जाँचो, परखो—बातों में सभी अच्छे हैं, किसी के विचारों में कोई कमी नहीं है; कमी तो बस, व्यवहार में है। जो विचार में है, वह व्यवहार में नहीं है। बातें केवल बाते हैं, कर्म से उनका कोई सरोकार नहीं है।

कागजों में छपे हुए काले अक्षरों में कोई कालिख नहीं है, सिद्धांत सभी के स्वच्छ हैं; लेकिन मन और जीवन में स्वच्छता के स्थान पर कालिख की कालिमा

स्वाधीनता-संघर्ष के समय राजनीति के मूल्य-मानक एवं मानदंड—त्याग, सेवा, देशप्रेम पर केंद्रित थे। आपस में मतभेद होते हुए भी मनभेद न था।

है। इसलिए सिद्धांतों और कागजों की फेर-बदल से कोई विशेष परिवर्तन नहीं आने वाला है। यह उलट-पलट तो रोज-रोज, हर रोज होती रहती है; लेकिन इससे अब तक तो कुछ हुआ नहीं है, संभवतः आगे भी कुछ नहीं होगा। जो सत्ताधीश हैं, जो साहिबे मसनद हैं, उनमें आप ही जनता से भारी भरकम भय भरा हुआ है। सभी के लिए सुरक्षा-गारद हैं। इनमें आपस में कहीं कोई संवाद नहीं है। सभी एकदूसरे से असुरक्षित और आक्रोशित हैं। देश वही है, जो सत्तर साल पहले था, लेकिन अब वह वातावरण नहीं रहा। राजनीति के गलियारों में अब विचार-

विमर्श के स्वर कम और दुरभिसंधियों की दुर्गंध कहीं अधिक फैलती-उभरती नजर आती है।

परिस्थितियों से तो सभी वाकिफ हैं, लेकिन परिवर्तन के प्रयास नहीं के बराबर हैं। जो थोड़े-बहुत छिट-पुट होते भी हैं, उनमें प्रभाव नहीं है; क्योंकि हर समाधान के लिए नए नियम, नए कानून बना लिए जाते हैं; जो थोड़े ही दिनों में नाकारा साबित होने लगते हैं, तब नए नियमों की तलाश शुरू हो जाती है। नियमों का बोझ बढ़ते समय के साथ बढ़ता जाता है, लेकिन परिस्थितियाँ परिवर्तित नहीं हो पातीं। इस बारे में यदि पिछले दशकों से पड़ताल शुरू करें, तो बात साफ हो जाती है कि नियमों से बात न बनने वाली थी और न बदलने वाली ही है। समस्या का समाधान संस्कृति व सांस्कृतिक मूल्यों से होगा। राष्ट्रप्रेम की राष्ट्रीयता से होगा। मूल्यों-मानकों व मानदंडों के नएपन से होगा।

यह तभी संभव होगा, जब जनता जागे। आने वाले समय में यही होने वाला है। सतयुग के सत्य व प्रकाश युग के परिवर्तन—बदलती हवाएँ करेंगी। नए युग के सूरज की रोशनी, अँधियारे को कोई ठौर-ठिकाना न मिलने देगी। स्वाधीनता मिलने पर लोकतंत्र की स्थापना हुई। निश्चित ही यह स्वाधीन भारत को मिली सौगात और मिला सौभाग्य था, लेकिन इस सौगात और सौभाग्य का लाभ कैसे उठाया जाए? इसके लिए जन शिक्षण-जन प्रशिक्षण की आवश्यकता थी, जो न तब हुआ और न अब हो रहा है, लेकिन आने वाले समय में अवश्य होगा। अभी नियम टूटने पर या तोड़े जाने पर सवाल पुलिस, अदालतें और एजेंसियाँ पूछती हैं। तब इन सवालों के उत्तर के लिए नई-नई काट और नए-नए पैंतरे ढूँढ़ लिए जाते हैं। अधिक हुआ, तो महँगे वकीलों की फौज उतार दी जाती है।

अब तो बात प्रचलन में आ चुकी है कि न्याय धनवानों के लिए है, गरीबों के लिए नहीं, लेकिन बयार बदलने पर ऐसा न हो पाएगा। तब सवाल जनता पूछेगी। उसे मूर्ख न बनाया जा सकेगा। जनता में जाग्रति की हवा बहेगी। लोकतंत्र केवल शब्द न रहेगा, इसके अर्थ ढूँढ़े जाएँगे। कोई भी अनर्थ न कर सकेगा। जब से देश आजाद हुआ है, तब से अब तक कई बार पुस्तकें बदलीं, पाठ्यक्रम बदले।

इस बदलाव के बारे में पक्ष और विपक्ष में कई तरह की बातें कही गईं। अभी भी कही जा रही हैं, लेकिन कुछ अनिवार्य बातें छूट गईं, जिनकी सार्थक चर्चा बालपोथी से लेकर स्नातक स्तर तक नहीं की गई। इनमें सबसे पहली बात है—हमारे देश का लोकतंत्र, संरचना, स्वरूप, कर्त्तव्य एवं अधिकार। इसकी मूलभूत बातें देश के प्रत्येक बालक-बालिका से लेकर युवक-युवती व वृद्ध जनों को अवश्य ज्ञात होनी चाहिए।

इसी के साथ एक बात और है, देश की एकता-अखंडता का सत्य, जो बताया-सिखाया व समझाया जाना चाहिए। संत, सुधारक, शहीद, कवि, कलाकार, साहित्यकार, स्वाधीनता सेनानी देश के हर अंचल में हुए हैं। समूचे देश ने साथ मिलकर स्वाधीनता का समर लड़ा था। जब बालपोथी में बालक-बालिकाएँ अपने क्षेत्र व अंचल के अलावा देश के दूसरे अंचल-क्षेत्रों की बातें जानेंगे, तो राष्ट्रीय एकता अलग से समझानी नहीं पड़ेगी। उत्तर भारत के लोग जब तिरुवल्लुवर को पढ़ेंगे, तो दक्षिण भारत के लोगों को तुलसीदास को अपनाने में कोई अड़चन न होगी। हमारे देश के संतों ने, आचार्यों ने पहले से ही समूचे देश को एक संस्कृति में गूँथ रखा है। बस, इसके लिए नवजागरण चाहिए।

राजनीति की नीति सही करने के लिए राष्ट्रप्रेम अनिवार्य है। ठीक वैसा ही राष्ट्रप्रेम, जैसा कि स्वाधीनता समर के दिनों में था। तब खुदीराम बोस पहले भारतीय थे, फिर बंगाली; शहीद भगत सिंह पहले भारतीय थे, फिर पंजाबी; सुब्रह्मण्यम भारती

पहले भारतीय थे, फिर तमिल। इसी तरह अशफाक उल्ला खाँ, मौलाना अबुल कलाम आजाद पहले भारतीय थे, फिर मुसलमान। हमारा देश बड़ा है, उदाहरण भी असंख्य हैं।

सबको एक साथ नहीं गिनाया जा सकता, लेकिन सबमें समान रूप से समाये राष्ट्रप्रेम को समझा जा सकता है। राष्ट्रप्रेम सच्चा और पक्का होगा, तो राजनीति की नीति भी सँवर जाएगी। अभी राष्ट्रप्रेम पर सत्ता-प्रेम, धन-प्रेम भारी पड़ने लगा है। कभी-कभी परिवार-प्रेम भी बहुत भारी हो जाता है। जब यह बढ़ जाता है, तो राजनीति की नीति में अनीति अपने आप घुस जाती है।

चुनाव आते ही सब अपनी और अपनों की अच्छाइयों का बखान शुरू कर देते हैं। प्रत्याशियों की योग्यता के नाम पर उनकी शिक्षा पर सवाल उठाए जाते हैं, उठाए भी जाने चाहिए, लेकिन सबसे बड़ा सवाल सेवा और सादगी का है—यह सबसे पहले मुखर रूप में उठाया जाना चाहिए। जिस क्षेत्र में जिस प्रत्याशी ने जनसेवा की है, उसी को प्राथमिकता मिलनी चाहिए।

जिस तरह से खरचीली शादियाँ परिवारजनों को दरिद्र व बेईमान बनाती हैं, ठीक उसी तरह से खरचीले चुनाव राजनीति और राजनेता को भ्रष्ट व बेईमान बनाने में कोई कोर-कसर नहीं छोड़ते हैं। बंगाल के मुख्यमंत्री डॉ0 विधानचंद्र राय हमेशा साइकिल रिक्शा से चला करते थे। कुछ वर्षों पूर्व तक त्रिपुरा के मुख्यमंत्री साइकिल से ही चला करते थे। यह सब बड़े होने की, उनके बड़प्पन की पहचान है। बदलते हुए समय में कुछ ऐसे ही बदलाव के आसार हैं।

इसी का उल्लेख करते हुए परमपूज्य गुरुदेव कुंडलिनी जागरण अंक के राष्ट्र कुंडलिनी की परिवर्तन प्रक्रिया में लिखते हैं—'गोवर्धन की मानसी गंगा की तली में जमी कीचड़ को भी इन्हीं दिनों पूरी तरह निकालकर उसमें नया पानी भरने का प्रावधान बना है। ठीक इसी तरह विश्व वातावरण में जो विविध प्रकार की अवांछनीयताएँ घुस पड़ी हैं, उनके परिमार्जन, परिशोधन किए जाने का ठीक यही समय है।'

राजनीति की नीति में भी यही होने वाला है। भावी समय में उसमें अनीति व कुरीति को न रहने दिया जाएगा। दलों का भी दलदल और कीचड़ साफ होगा। प्रत्याशी की परिभाषा भी राष्ट्रप्रेम, सेवा व सादगी के आधार पर की जाएगी। सूत्र और सिद्धांत कागजों के छपे अक्षरों तक सिमटे न रहेंगे। उनके पृष्ठों के प्रकाश को व्यवहार में भी प्रकाशित होना पड़ेगा। यह परिवर्तन कोई व्यक्ति या संस्था नहीं, बल्कि समय करेगा। उचित की परख-पहचान करके पुरस्कृत किया जाएगा; जबकि अनुचित करने वाले अभागे, उपेक्षित व तिरस्कृत ही किसी कोने में पड़े रहेंगे। इसी प्रभाव से सभी को प्रकाशित प्रशासन मिलेगा। ❑

देश की एकता-अखंडता का सत्य, जो बताया-सिखाया व समझाया जाना चाहिए। संत, सुधारक, शहीद, कवि, कलाकार, साहित्यकार, स्वाधीनता सेनानी देश के हर अंचल में हुए हैं। समूचे देश ने साथ मिलकर स्वाधीनता का समर लड़ा था। जब बालपोथी में बालक-बालिकाएँ अपने क्षेत्र व अंचल के अलावा देश के दूसरे अंचल-क्षेत्रों की बातें जानेंगे, तो राष्ट्रीय एकता अलग से समझानी नहीं पड़ेगी।

अपना सुधार संसार की सबसे बड़ी सेवा

विगत अंकों की चर्चा में जन्मशताब्दी वर्ष के सुअवसर पर हम सभी की जीवन-साधना और संकल्प को प्रखर बनाने वाली बातों को साझा किया गया है। पूज्य गुरुदेव की चिंतन-चेतना से, जो विचार सूत्र हमारे मार्ग को प्रकाशित करने के लिए निर्दिष्ट हैं, उन विचार-सूत्र रूपी जीवन मंत्रों को उपासना, साधना और आराधना के अनुबंधों के रूप में हमने सहर्ष स्वीकार किया है। गुरु निर्देशों पर चलने और अहर्निश आगे बढ़ने की शक्ति-सामर्थ्य हमें उन्हीं के विचार मंत्रों से प्राप्त होती है।

पूज्य गुरुदेव का बताया-सुझाया जीवन-पथ हम परिजनों के लिए ही नहीं, अपितु संपूर्ण मानवता के लिए सुख-शांति और कल्याणकारी जीवन का राजमार्ग है। उनके हम सब प्रतिनिधि हैं, उत्तराधिकारी हैं, अतः इस मार्ग पर चलकर दिखाने और डटे रहने का आदर्श हमें ही दुनिया के समक्ष प्रस्तुत करना है।

समस्त संसार हमारे कर्म, आचरण और व्यवहार में ही गुरुदेव के चिंतन और इस महान मिशन की आदर्शवादिता की झलक देखेगा, तभी प्रेरित हो अनुगामी बनेगा। ध्यान रहे कि हमारा युगधर्म पूज्य गुरुदेव के विचारों को स्वयं में चरितार्थ करना है, केवल सोच-विचार-चिंतन-बातें, चर्चा करने से बात नहीं बनने वाली, जीवन व्यवहार में साकार करना ही एकमात्र कसौटी है।

सर्वविदित है कि हमारे चिंतन, चरित्र और व्यक्तित्व को अन्यों के समक्ष—समस्त संसार के सामने प्रस्तुत करने का एकमात्र माध्यम है, वह है—हमारा व्यवहार। इसी के बलबूते हम विश्व-समाज से और समाज हमारे माध्यम से गुरुदेव से जुड़ पाएगा। अतः व्यवहार की कुशलता और परिष्कार हमारे लिए अनिवार्य आवश्यकता है।

सभी गायत्री परिजन इस सत्य से भली भाँति परिचित हैं कि जिस समाज-समुदाय में हम रहते हैं, वह समाज ही हमारे लोकसेवा के संकल्प को सार्थक बनाने वाली कर्मभूमि है। हमारी आराधना का साधन और साध्य समाज ही है। इस कर्मभूमि में जब जैसा बोया जाता है, वैसी ही फसल लहलहाती दिखाई पड़ती है।

पूज्य गुरुदेव-वंदनीया माताजी ने समाज में प्रेम, संवेदना और आत्मीयता को बोया और उसकी फसल अखिल विश्व गायत्री परिवार के रूप में हम-सब प्रत्यक्ष हैं। हमें गुरुदेव-माताजी को ही तो समाज में बोना है और उनके चिंतन आदर्श की फसल सारी दुनिया में लहलहानी है। आखिर जन-जन तक गुरुजी-माताजी को पहुँचाना ही तो हमारा असली दायित्व है।

उन्हीं की भाव-संवेदना का अंश अपने अंतःकरण में धारण कर समाज के बीच जाकर खड़े होना है और अपने आचरण-व्यवहार से उनके विचारों की फसल उगानी है।

हमारे इष्ट-आराध्य ने हम परिजनों के लिए लोकसेवा के क्षेत्र में कदम रखने से पूर्व स्वयं के व्यक्तित्व को परिमार्जित करने और प्रखर बनाने का कार्य सौंपा है एवं **'अपना सुधार संसार की सबसे बड़ी सेवा'** का सूत्र दिया है। स्वयं उन्होंने भी जिस जीवनचर्या का आदर्श प्रस्तुत किया है,

उसमें उपासना, साधना के साथ-साथ आराधना भी एक अनिवार्य अनुबंध है।

इस महान मिशन की नींव व जड़ें परिष्कृत चिंतन और दिव्य चरित्र के आध्यात्मिक तंतुओं से बुनी गई हैं तथा यह प्रत्यक्ष दिखाई पड़ने वाला विराट संगठन व्यवहार के उत्कृष्टतम मूल्यों से सूत्रबद्ध है। **'शालीनता बिना मोल मिलती है, पर इससे सब कुछ खरीदा जा सकता है'**—इस महाकथन का प्रत्यक्ष चरित्र-चित्रण ही तो है हमारा यह विश्वव्यापी विशाल परिवार।

अंतर्तम में झाँकें तो पता चलेगा कि गुरुदेव के इस अभियान में हम उनकी सादगी, सज्जनता, शालीनता, प्रेम और सद्व्यवहार के मोल ही तो बिके हैं, शेष चीजें तो बाद में जुड़ी हैं। जीवन व्यवहार की उत्कृष्टता का ऐसा अद्वितीय-अनुपम उदाहरण भला अन्यत्र कहाँ मिल सकता है। यह चमत्कार आराधना के मार्ग को वरण करने का सर्वोच्च आदर्श प्रस्तुत करता है।

आराधना का क्षेत्र अत्यंत व्यापक है, इसकी परिधि में समूचा विश्व समुदाय मौजूद है। जीवन साधना के पथ पर आराधना के क्षेत्र में प्रवेश का तात्पर्य है—व्यक्तित्व को व्यापकता और विशालता प्रदान करना। व्यष्टि चेतना का समष्टि चेतना में आरोहण है यह आराधना का मार्ग। विश्व के नवनिर्माण और विश्व के सर्वकल्याण वाले हमारे मिशन का लक्ष्य समष्टि चेतना के केंद्र में ही स्थित है। वहाँ पहुँचे बिना—व्यक्तित्व को विशालता दिए बिना, इसकी उपलब्धि संभव नहीं है।

व्यष्टि चेतना के उत्थान के लिए साधना-समाधि का आश्रयस्थल खोजा जाता है और समष्टि चेतना के उत्कर्ष के लिए समाज का अवलंबन किया जाता है। समाज में जाने पर वह सर्वप्रथम हमारे आचरण-व्यवहार की कसौटी परखता है। इस कसौटी पर खरे उतरकर ही युगनिर्माणी कारवाँ गतिशील रहा है और आगे भी रहेगा। हमारी आराधना का उद्देश्य भले ही विश्व-वसुधा—प्राणिमात्र का कल्याण है और समस्त क्रियाकलाप इसी दिशा में उन्मुख हैं, परंतु इस साध्य के लिए हमारा सर्वोपरि साधन शुद्ध व्यवहार, सदाचरण ही है।

शताब्दी वर्ष की इस पुण्यवेला में हमें इस ओर भी सजगता बरतनी है; क्योंकि चिंतन, विचार, चरित्रगत आदर्शों को साध लेने मात्र से बात नहीं बनने वाली है, इसके साथ-साथ व्यवहार को भी उत्कृष्टता के मानदंडों में प्रस्तुत करना आवश्यक है।

सोच, चिंतन, भावना आदि सब कुछ अच्छा होने पर भी सच्चाई यही है कि जनसमाज की दृष्टि सर्वप्रथम हमारे व्यवहार पर ही जाती है। आदर्श व्यवहार के माध्यम से ही लोग हमारे संपर्क में आते हैं और फिर हमारे आचरण-विचारों के माध्यम से अपनत्व की डोर में बाँध विराट परिवार का सहर्ष हिस्सा बन जाते हैं।

गुरुदेव और समाज के बीच हम सब निमित्त हैं, उनके लीला-सहचर हैं, साधन हैं। हम और हमारा व्यवहार उनके लक्ष्य-सिद्धि में एक महत्त्वपूर्ण भूमिका में स्थान रखते हैं। अतः हमारे हिस्से के पुरुषार्थ और पात्रता में कोई कमी-कमजोरी न रहे, यह जिम्मेदारी स्वयं हमारी है। व्यवहार की सत्यता-सौम्यता, प्रामाणिकता और उत्कृष्टता के महत्त्व को समझें और ध्यान रखें कि जीवन-साधना के अन्य आयामों की तरह इसका भी समान महत्त्व है।

व्यवहार की कसौटी पर—नैतिक स्तर की सहज-सामान्य व्यावहारिकता की कसौटी पर खरा उतरना भी हमारे महान लक्ष्य की अनिवार्यता में से एक है। इष्ट के सान्निध्य से अंतःकरण में प्रेम, दया, करुणा, सेवा, सहायता, संवेदना, परमार्थ-

भावना, कल्याण की इच्छा जैसी सत्प्रवृत्तियाँ व्यक्तित्व में समाहित हो ही जाती हैं, परंतु इनकी अभिव्यक्ति के लिए व्यवहार में सरलता, निश्छलता, सच्चाई, विनम्रता, मधुरता, संयमितता जैसे मूल्यों-मानदंडों को अपनाना आवश्यक है। समय, देश, काल, परिस्थितियों का सही आकलन और पात्रता का ध्यान रखते हुए समाज में किया गया व्यवहार शत-प्रतिशत सकारात्मक परिणाम उत्पन्न करता है।

व्यवहार की कुशलता और श्रेष्ठता लोकसेवा के मार्ग को अत्यंत सरल और सहज बना देते हैं। पूज्यवर के विचारों में व्यवहार को साधने का मार्ग सीधा और सरल है। चिंतन की प्रखरता से व्यवहार में कुशलता आती है तथा आचरण-चरित्र की शुद्धता व पवित्रता से व्यवहार में प्रामाणिकता व विश्वसनीयता सिद्ध होती है।

चिंतन और चरित्र दोनों मिलकर के हमारे व्यवहार को उत्कृष्टता प्रदान करते हैं। उत्कृष्ट व्यवहार ही हमारे भीतर की सत्यता को सार्थक अभिव्यक्ति प्रदान कर लक्ष्यप्राप्ति में महत्त्वपूर्ण भूमिका निबाहता है।

यद्यपि चिंतन-चरित्र और व्यवहार—तीनों व्यक्तित्व की समग्रता के अनिवार्य अंग हैं, तथापि चिंतन और चरित्र का संबंध व्यक्तित्व के आंतरिक पक्ष से है; जबकि व्यवहार बाह्य पक्ष को अभिव्यक्त करता है।

अत: व्यवहार को साधने, परिष्कृत करने और निर्वाह करने में अंत:पक्षों के साथ-साथ समाजगत बाहरी पहलुओं का भी ध्यान रखना आवश्यक हो जाता है। व्यवहार की सार्थकता तभी सिद्ध होती है, जब इसमें लोक मर्यादाओं का पालन किया जाए। बातें बड़ी-बड़ी हो रही हों और आचरण में व्यावहारिकता के, लोक मर्यादा के मूल्य ओछे पड़ रहे हों, ऐसी विडंबना हमारे साथ न हो।

व्यवहार में अहंकार, दुराग्रह, कर्कशता, आवेग, दिखावा, बड़प्पन, असंतुलन जैसी कमजोरियाँ न उत्पन्न हों, इसके लिए सर्वस्व गुरु को समर्पित-अर्पित कर उन्हीं की चिंतन-चेतना, संवेदना के यंत्रमात्र बनकर समाज में प्रस्तुत होना ही श्रेयस्कर है। व्यवहार हमारा चिंतन से परिष्कृत और आचरण से परिशोधित हो—इष्ट सत्ता से यही अभ्यर्थना है। ❐

ऋषि के चरणों में गिरकर राजा ने प्रार्थना की—"भगवन्! आशीर्वाद दें कि मेरा शत्रु न हो।"

ऋषि बोले—"राजन्! पहले अपने समीपवर्ती शत्रुओं का शमन करो। उन पर विजय प्राप्त करो, फिर तुम्हें कोई शत्रु भयभीत नहीं कर सकेगा।" राजा ने आशंकित स्वर में पूछा—"भगवन्! मेरे निकट कौन मेरा शत्रु है?"

ऋषि हँसते हुए बोले—"राजन्! वो शत्रु तुम्हारे कोई पदाधिकारी नहीं हैं, बल्कि तुम्हारे मन में बैठे आलस्य व प्रमाद हैं। आलस्य शारीरिक श्रम से बचने का नाम व प्रमाद मानसिक शिथिलता का नाम है। शरीर से सक्षम होते हुए भी यदि कोई श्रम से जी चुराए तो प्रमादी कहलाता है। ये दोनों शत्रु मिलकर मनुष्य की क्षमताओं को नष्ट कर देते हैं। तुम इन पर विजय प्राप्त करो, फिर तुम्हें शत्रु से भयभीत होने की आवश्यकता नहीं रह जाएगी।" राजा को जीवन के लिए सही दिशा मिल गई।

शत-शत तुम्हें प्रणाम

शक्तिस्वरूपा नारी, तेरे हैं अनंत अनुदान।
श्रेष्ठ समुन्नत सृष्टि बनाई, शत-शत तुम्हें प्रणाम॥

निज काया के अंश रूप में, लाल धरा पर लाती।
रक्त बना निज श्वेत उसे, प्रतिपल पयपान कराती॥
स्वयं अनेकों कष्ट उठा, देती उसको मुस्कान।
श्रेष्ठ समुन्नत सृष्टि बनाई, शत-शत तुम्हें प्रणाम॥

छोटी होकर भी भगिनी, भाई पर प्राण लुटाती।
सदा खिलाकर उसको खाती, अभिभावक बन जाती॥
श्वसुरालय जाकर भी, उनके सुख का रखती ध्यान।
श्रेष्ठ समुन्नत सृष्टि बनाई, शत-शत तुम्हें प्रणाम॥

सास-ससुर-पति सेवा करती, सदा खिलाकर खाती।
संस्कारों से देवी बनकर, अपनापन बरसाती॥
समर्पण की यह पराकाष्ठा, अनुपम और महान।
श्रेष्ठ समुन्नत सृष्टि बनाई, शत-शत तुम्हें प्रणाम॥

करुणाकर की कृपादृष्टि से, कन्याएँ घर आतीं।
संस्कारों का संबल पाकर, धन्य धरा कर जातीं॥
सेवा की प्रतिमूर्ति पुत्रियाँ, हो यह सब को ज्ञान।
श्रेष्ठ समुन्नत सृष्टि बनाई, शत-शत तुम्हें प्रणाम॥

नारी क्या है? हम, उसकी गौरव-गरिमा समझाएँ।
गाँवों में नगरों में कन्या, कौशल शिविर लगाएँ॥
शांतिकुंज ही क्रांतिकुंज है, चलाए प्रखर अभियान।
श्रेष्ठ समुन्नत सृष्टि बनाई, शत-शत तुम्हें प्रणाम॥

—चक्रेश पाण्डेय

युगव्यास वेदमूर्ति तपोनिष्ठ
पंडित श्रीराम शर्मा आचार्य
के
समग्र वाङ्मय का क्रमिक परिचय

खंड- 9
गायत्री महाविद्या का तत्त्वदर्शन

गायत्री को वेदमाता कहा जाता है। शास्त्रों में ऋषिगणों ने इस मंत्र की महिमा का गुणगान खुलकर किया है। गायत्री को उपासक कामधेनु अथवा कल्पवृक्ष के रूप में मानते हैं। इस महामंत्र से अपरिमित शक्ति पाने के लिए जानें—

- गायत्री का स्वरूप और रहस्य।
- गायत्री परा-अपरा विद्या की अधिष्ठात्री।
- गायत्री की प्रचंड प्राण-ऊर्जा।
- गायत्री का भावनात्मक और वैज्ञानिक महत्त्व।
- त्रिपदा गायत्री का रहस्य।
- गायत्री- उपासना के सत्परिणाम।

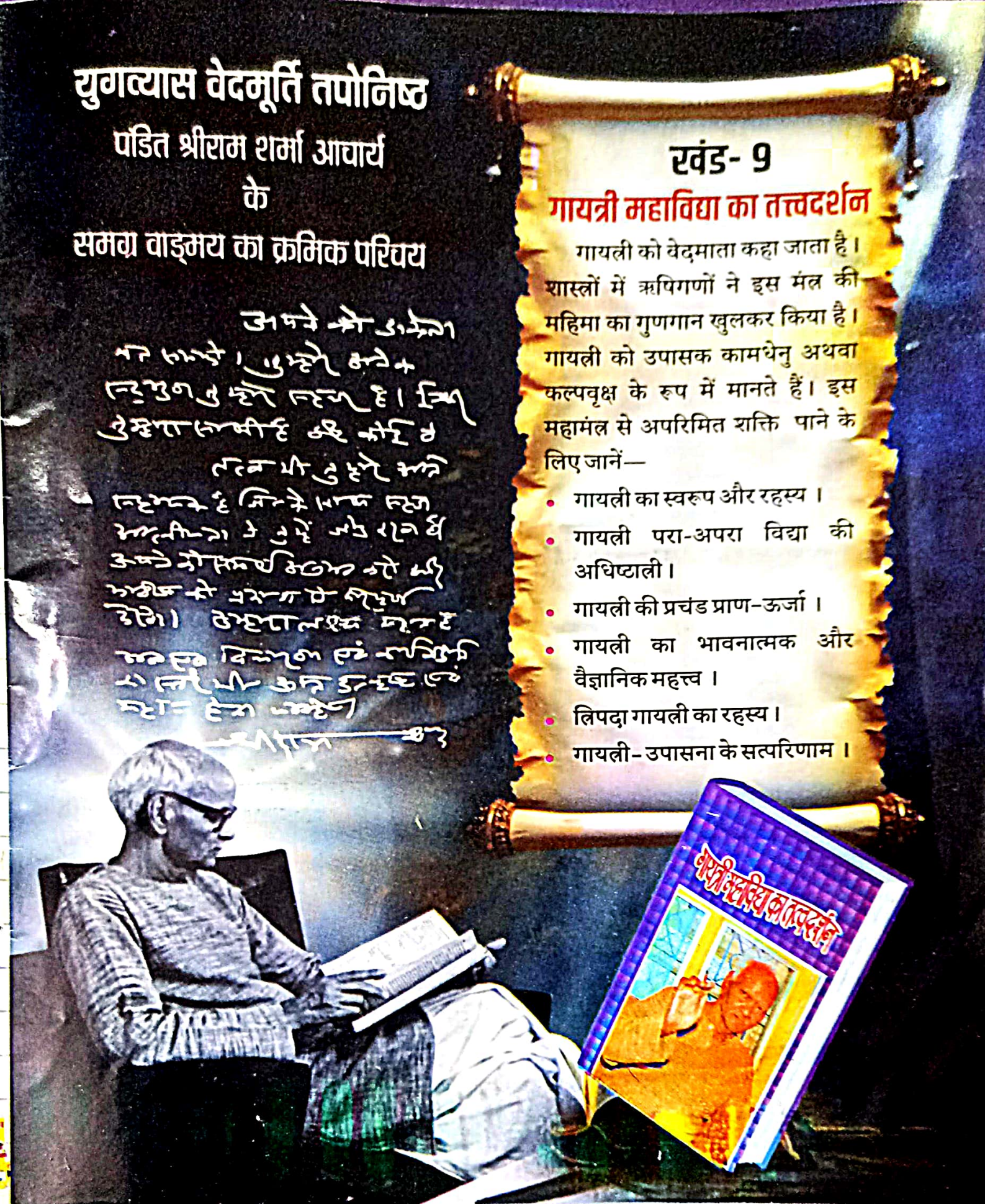

अखण्ड ज्योति
(मासिक)
R.N.I. No. 2162/52

www.awgp.org

प्र. ति. 01 / 08 / 2025
Regd. No. Mathura - 025/2024-2026
Licensed to Post without Prepayment
No. : Agra/WPP - 08/2024-2026

देव संस्कृति विश्वविद्यालय के प्रतिकुलपति डॉ॰ चिन्मय पण्ड्या जी द्वारा रोम (इटली) में इटली की संसद, अंतर-सांसदीय संघ एवं रिलीजन फ़ॉर पीस के संयुक्त तत्वावधान में आयोजित सम्मेलन में भागीदारी एवं भारत राष्ट्र के प्रतिनिधि के रूप में "विश्वास को सशक्त बनाना एवं साझे भविष्य की आशा को अपनाना"—विषय पर चर्चा।

संयुक्त अरब अमीरात के दुबई शहर में विराट दीप महायज्ञ एवं कलश पूजन
प्रतिकुलपति (देव संस्कृति विश्वविद्यालय) द्वारा सक्रिय गायत्री परिजनों से एक सार्थक संवाद

स्वामी, प्रकाशक, मुद्रक—मृत्युंजय शर्मा द्वारा जनजागरण प्रेस, बिरला मंदिर के सामने, जयसिंहपुरा, मथुरा से मुद्रित व अखण्ड ज्योति संस्थान, बिरला मंदिर के सामने, मथुरा—वृंदावन रोड जयसिंहपुरा, मथुरा-281003 से प्रकाशित। संपादक—डॉ. प्रणव पण्ड्या।
दूरभाष — 0565- 2403940, 2972449, 2412272, 2412273 मोबाइल — 09927086291, 07534812036, 07534812037, 07534812038, 07534812039
ई-मेल—akhandjyoti@akhandjyotisansthan.org